thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य समाज सान्ताक्रुज़
ARYA SAMAJ SANTACRUZ
स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका

❐ वर्ष-5 ❐ अंक-9
❐ मुम्बई ❐ सितम्बर-2014
❐ मूल्य-रु.9/-

आर्य समाज सान्ताक्रुज़ वेदप्रचार समारोह के कुछ चित्र

वेद प्रचार में आचार्य विद्याभानु शास्त्री (जम्मू) प्रवचन देते हुए।

स्व. श्री राजकुमार कोहली वरिष्ठ विद्वान पुरस्कार से सम्मानित आचार्य श्री विद्याभानु शास्त्री (जम्मू) को ट्राफी प्रदान करते हुए आर्य समाज सान्ताक्रुझ के प्रधान श्री चन्द्रगुप्त आर्य, श्री लालचंद आर्य, दायें श्री नरेन्द्र मदान एवं बायें श्री संदीप आर्य

श्री प्रभाकर शर्मा द्वारा निर्मित सी.डी. ''कैसे आयेंगे भगवान'' का विमोचन आचार्य विद्याभानु शास्त्री जी के करकमलों से हुआ।

भजनोपदेशक श्री अमर सिंह को सम्मानित करते हुए सक्रिय सदस्य श्री अशोक राजभर

thearyasamaj.org

प्रभु भक्त को क्या मिलता है

– ललित मोहन साहनी

असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अवसा सन्तु नेमे।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ।।

ऋ : १/५४/८

तर्जः जब रात नहीं कटती

जब आस नहीं मिटती
तेरी प्यास नहीं बुझती
बन्दगी कैसे मिटेगी।।

।। जब आस ।।

तन्मय तू हो जा मन, अर्पण खुद को कर दे
अनुभव न किया तो कर, हृदय में भक्ति बहेगी ।।

।। जब आस ।।

उपकार स्मरण कर ले, प्रभु-धन्यवाद कर ले
उद्‌गार प्रकट होगें, खुशी फिर क्यों ना बढ़ेगी ।।

।। जब आस ।।

दु:खियों पे दया का हाथ, परमेश्वर ही रखते
प्रभु की रक्षा-शक्ति, निर्बल की लाठी बनेगी।।

।। जब आस ।।

कन्द मूल फूल व फल, जलवायु प्रकाश मिले
प्रभु के चरणों में है धरती, क्यों ना हरियाली खिलेगी ।।

।। जब आस ।।

उपदेश ज्ञान विज्ञान, दया न्याय के वर्षक तुम
तेरी प्रेरणा ही प्रभु सद्‌गुणों की वर्षक बनेगी।।

।। जब आस ।।

शुभकर्म की शिक्षा दे तव छत्र की भिक्षा दे
बिन कर्म के तव भक्ति, हृदय में कैसे रहेगी।।

।। जब आस ।।

ऐ मन! हर दु:खियों के दु:ख, उपकार से भर जीवन
शुभकर्म तू करता चल, मनीषा तुझको मिलेगी।।

।। जब आस ।।

(बन्दगी)=भक्ति करना, (लवलीन)= तन्मय, निमग्न, (उद्‌गार)= बढ़ती, (छत्र)=बुद्धि, मति

अश्मन्वती रीयते सँ रमध्वमुत्तिष्ठत् प्रतरता सखायः।
अत्रा जहीमोऽशिवा ये असञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान्।।

ऋग. १०/५३/८, अथर्व. १२/२/२६, यजु.३५/१०

तर्जः हा सागरी किनारा

दुस्तर नदी किनारा और पार करना भारा
विषयों में बह रहे हैं ढूँढ़ा नहीं सहारा

।। दुस्तर ।।

भोगों के तीखे पत्थर, पग पग पड़े हैं डटकर,
जो चुभें तो डगमगाते, बहे जा रहे हैं डरकर
कहीं डूबने का डर है, मन क्या करे बेचारा

।। विषयों में ।।

पथ-रोक, भाँति-भाँति, बिन पार सुख ना शान्ति,
ना यत्न है ना दृढ़ता न बनाया मन सिद्धान्ति
सर पे अशिव का बोझ जिसे पाप ने बिगाड़ा।।

।। विषयों में ।।

कल्याणकर प्रतीक्षा तेरे वाज की है आज
विषय-भार यदि हटा दें, नदी पार हों अबाध,
पुरुषार्थ कर ले जी भर, ना कोई और चारा।।

चाहे नदी विकट है, विषय-वाह भी उत्कट है
मनोबल अटूट है यदि कल्याण भी निकट है
नदी-पार तेरा प्रीतम, पर बीच में निवाड़ा।।

।। विषयों में ।।

(दुस्तर) जिसको पार करना कठिन हो, (भारा) कठिन, (रास) अनुकूल, (सिद्धान्ति) निर्णय किया हुआ, (वाज) सच्चे भोग, ज्ञान और बल (अबाध) बेरोक (चारा) उपाय (उत्कट) मतवाला (निवाड़ा) नाव को नदी के बीच ले जाकर चक्कर लगाने की क्रिया, संसार का चक्कर लगाना

शुगर (डायबिटीज) इलाज बिना दवा

१) पेट पर लेटें। दोनों हाथ की हथेली एक गाल के नीचे रखें, पूरी सांस अंदर भरें, पूरी सांस बाहर निकालें ३० मिनट।

२) बैठकर आंख मूख बंद। सांस अन्दर भरें तुरंत ठुड्डी छाती पर लगाएं-व पेट ऊपर नीचे हिलाते रहें। सांस अंदर रोकना जब मुश्किल हो, गर्दन ऊपर उठा दें, सांस अपने आप बाहर जायेगी। १० मिनट करते रहें। आखें खोलें।

३) आमदनी का कुछ प्रतिशत दान व प्रति दिन २० मिनट ध्यान करें।

४) भोजन : जो भगवान श्री राम, माता सीता, भाई लक्ष्मण ने १४ वर्ष लिया, आप ७ दिन लें। उसके बाद सुबह का नाश्ता, दिन का खाना बिल्कुल बंद करके दोपहर में सस्ते फल-सलाद या जूस, एंव रात में खाना, रायता चटनी सब्जी।

चावल, आलू मीठा दूध तली जंकफूड तो बंद है ही/ केवल चने की रोटी हि लें। चने का आटा व उतना ही जौ का आटा मिला सकते हैं। यदि गेहूँ का प्रयोग करना है तो आटा को कठाई में गर्म लाल करें, ठंडा होने पर रोटी बनावें (तव तो इंसुलीन की जरूरत भी न होगी। १० दिन बाद चैक करा लें, प्रसन्नता ही होगी। कोई दवा, मेथी करेला जामुन यदि ले रहे हो, जारी रख सकते हैं) कुछ सप्ताह/माह में चमत्कार देखेंगे। कब्ज हो, २-३ गिलास ताजे पानी का एनिमा दिन में दो बार ले। अपने बाथ रूम की टोंटी में छोटी पतली रबड पाइप का प्रबन्ध कर ले। हँसते रहें, हँ साते रहें मुस्कुराते रहें!

डा. ओ. एस. वर्मा योगाचार्य

thearyasamaj.org

आर्य समाज सांताक्रुज, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ५ अंक ९ (सितम्बर-२०१४)

दयानंदाब्द : १९१, विक्रम सम्वत् : २०७१
सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११५

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- एक प्रति : रु. ९/-
१/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- वार्षिक : रु. १००/-
१/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- आजीवन : रु. १०००/-
विशेषांक की दरें भिन्न होंगी।

वर्गीकृत विज्ञापन
रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-
चैक /डीडी / मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। 'नूतन निष्काम पत्रिका' का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
प्रभु भक्त को क्या मिलता है	२
सम्पादकीय	३
''महर्षि का वास्तविक जीवन दर्शन''	४
ऋषि के कतिपण अन्य अमृतमय उपदेश	५-६
आर्य समाज के अविस्मरणीय शहीद..	६
हिन्दी गद्य के प्रथम उपासक महर्षि	७-८
विचार शक्ति का चमत्कार...	८
''यज्ञ द्वारा क्षय रोग चिकित्सा''	९-१०
डा. सोमदेव शास्त्री की ''अमेरिका यात्रा''	१०
केनोपनिषद्	११-१२
दैव्यजनों की सङ्गति	१३-१४
संक्षिप्त परिचय-आचार्य विद्याभानु शास्त्री जी	१४
सहनशीलता का जादू/ आर्य समाज सान्ताक्रुज़..	१५
स्वर्ग शारीरिक है आत्मिक?	१६

सम्पादकीय

पर्वों का बदलता स्वरूप

वस्तुत: ईश्वर के आनन्द का पूर्ण प्रकाश मानव जीवन में ही होता है। पर्व या उत्सव पर इस हार्दिक आनन्द के विकास का यथार्थ अवसर मिलता है। वैदिक आर्य जाति में पर्व वेदों के प्रादुर्भाव काल और सृष्टि से ही प्रचलित हैं। धर्मप्राण आर्य जाति के प्रत्येक भाव और कार्य में धर्म ओतप्रोत रहा है। उपनिषदों में धर्म को वृक्ष का रूपक देकर उसके तीन स्कन्ध बतलाये गये हैं। छान्दोग्य उपनिषद् के ''त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति।'' इस वचन में यज्ञ, अध्ययन और दान धर्मस्वरूपी वृक्ष का प्रथम स्कन्ध है, यह कहा गया है। आर्यों के पर्वों पर इन तीन धर्मों-यज्ञ, अध्ययन और दान का विशेष रूप से सम्पादन किया जाता है, जो आर्य जनता के हृदय को आनन्द से पूरित कर देता है। आर्य पर्व पद्धति के लेखक पं. भवानी प्रसाद के अनुसार आर्य पर्वों का जन्म समय - समय पर चार मुख्य उद्देश्यों को लेकर हुआ था। (1) किसी आवश्यक अवसर पर किसी बड़े यज्ञ के लिये, (पौर्णमासेष्टि, नवसस्येष्टि, आदि) (2) किसी विशेष ऋतु के परिवर्तन की ससमारोह सूचना देने के लिये (दीपावली, होलिका महोत्सव, संवत्सस्येष्टि, इत्यादि), (3) सर्वसाधारण के मनोरंजन और हृदयोल्लास प्रकाश के लिये (शरत्पूर्णिमा, तीज, वसन्तपंचमी, होलिका इत्यादि) (4) किसी युगप्रवर्तक महात्मा, अद्वितीय धर्मवीर, शूरवीर, प्रणवीर, इत्यादि की स्मृति मनाने के लिये। अस्तु!

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट हैं कि पर्व, अपनी मिट्टी, संस्कृति, सभ्यता से जुड़े हुए हैं। साथ ही वैदिक काल से संस्कृति के अनुरुप इन पर्वों का एक पारिवारिक, आपसी स्नेह, यज्ञ, परोपकार, दान इत्यादि का स्वरूप बना हुआ सभी मिलकर यथाशक्ति पर्वों को मनाते है। किन्तु वर्तमान में औद्योगीकरण एवं शहरीकरण के कारण इन, पर्वों का स्वरूप बदलता जा रहा है। हमारे पर्वों के नाम पर तथा कथित आडम्बर के साधन हमें दूसरों से खरीदने पड़ रहे हैं। इससे अर्थव्यवस्था पर भी बुरा असर पड़ रहा है। पर्व मात्र आडम्बर बनते जा रहे हैं। आपकी भावनाओं को भड़काकर पर्व के नाम पर करोड़ों रुपयों का अनावश्यक व्यय किया जा रहा है। पर्व का मूल स्वरुप गौण होता जा रहा है।

आइये ! पर्वों के यथार्थ स्वरूप को बनाये रखकर फिजूल खर्चों से बचें। और पर्वों के वैदिक स्वरूप को बनाये रखें।

- संगीत आर्य- 93235 73892

thearyasamaj.org

।।ओ३म्।।

"महर्षि का वास्तविक जीवन दर्शन"

खुशहाल चंद आर्य

यह लेख मैंने आदरणीय डॉ. महेश जी विद्यालंकार द्वारा लिखित "ऋषि दयानन्द की अमर गाथा" शीर्षक पुस्तक से उद्‌धृत किया है। इस पुस्तक में महेश जी ने महर्षि के गुण, कर्म स्वभाव पर इतनी सुन्दर विवेचना की है, जिसको पढ़कर अति प्रसन्नता तो होती ही है, साथ ही महर्षि के व्यक्तित्व, कर्तृत्व की भी पूरी जानकारी हो जाती है। इस पुस्तक को पढ़कर आर्य समाजी तो अति हर्षित होना ही है, यदि इसको कोई विरोधी विचार रखने वाला व्यक्ति भी पढ़ लेवे तो वह इतना अधिक आकर्षित होगा कि वह बार-बार इस पुस्तक को पढ़ने की इच्छा करेगा। यह पुस्तक केवल २६ पृष्ठों की है, मेरी इच्छा होती है कि यह पूरी पुस्तक ही पाँच-छ: लेखों में उद्‌धृत कर दूँ, पर दो-तीन लेख तो मैं अवश्य ही लिखूगाँ जिससे सुधि पाठक गण इसकी सरसता का आनन्द उठा सकें। प्रथम लेख इसी भाँति है:-

सदियों के बाद इस धरती को ऋषि दयानन्द के रूप में ऐसा महापुरुष मिला, जिसने जीवन के उनसठ वर्ष को प्राप्त किया, परन्तु कार्य काल का जीवन केवल १० वर्ष का ही रहा, इतने अल्प समय में ही उन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व के आलोक में संसार को चमत्कृत कर दिया। सोई हुई मानव जाति को जीवन जीने का सच्चा, सीधा तथा सरल मार्ग दिखा गया। प्रत्येक क्षेत्र में, ऋषि ने वेदसम्मत, सत्य, वैज्ञानिक , व्यवहारिक तथा उपयोगी मार्ग दर्शन दिया। उनका संकल्प था- "ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि", इस व्रत को उन्होंने जीवन भर निभाया। उन्होंने "सत्यमेव जयते" अन्त में सत्य की ही विजय होती है, इस वाक्य को जीवित रखा। उन्होंने सत्य की रक्षा के लिये जहर, पत्थर, गालियाँ न जाने क्या जुल्म नहीं सहे, मगर सत्यपथ से कभी विचलित नहीं हुए। प्राय: लोग धारा के साथ बहते हैं, परन्तु ऋषि ने धारा के विपरीत चलने का मानो प्रण कर रखा था। देश, धर्म और समाज की परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी थी, जिसमें गलत बातों से समझौता करके चलने से काम बनने वाला नहीं था। इसलिये ऋषि का सम्पूर्ण जीवन मुसीबतों कष्टों, बाधाओं और विपरीत परिस्थितियों में निकला। मगर स्वामीजी कभी निराश, हताश और दु:खी नहीं हुए। सच है कि:-

सदियों तक इतिहास न समझ सकेगा।
तुम मानव थे या मानवता का महाकाव्य।।

ऋषि का व्यक्तित्व एवं कृतित्व चुम्बकीय था। जो भी उनके सम्पर्क में आया, उसी का काया कल्प हो गया। न जाने कितने गुरुदत्त, श्रद्धानन्द, हंसराज, लेखराम आदि जीवनों को उन्होंने सन्त, महात्मा व परोपकारी बना दिया। इतनी प्रेरक, आकर्षक तथा जादुई शक्ति और किसी महापुरुष में नज़र नहीं आती। लोग तलवार लेकर आए, शिष्य बनकर गये। जिसने भी उन्हें देखा, पुन: और सम्पर्क में आया, उसी पर उनका जादू चल गया। जिधर से निकले, उधर ढ़ोंग पाखण्ड, अज्ञान, अन्धविश्वास को मिटाते हुए सत्यधर्म की रोशनी फैलाते गये। वह निर्भीक ईश्वर विश्वासी, योगी, सन्यासी, संसार में बुराईयों, कुरीतियों, गुरुढ़म, ढ़ोंगी महन्तों, सन्तों आदि के विरूद्ध अकेला चला, लड़ा और विजयी हुआ।

ऐसा देवपुरुष इतिहास में न मिलेगा, जिसने अपना सर्वस्व मानवता के कल्याण, उत्थान तथा मंगल में लगा दिया हो। अपने लिये न कभी कुछ चाहा, न माँगा और न संग्रह किया। जीवन भर ज़हर पीया, पत्थर खाये, अपमान सहा, बदले में अमृत लुटाता रहा। संसार के महापुरुषों में किसी न किसी प्रकार का कोई दोष रहा है। पवित्रात्मा ऋषि दयानन्द के जीवन में आदि से अन्त तक किसी प्रकार की संसारिक त्रुटि, दोष तथा दुर्बलता न थी। हीरे के समान इनका जीवन सभी ओर से चमकता था। उन्होने लोभ और भय को जीता हुआ था।

प्रसिद्ध एकलिङ्ग की गद्दी को ठुकराने में उन्हें एक क्षण भी नहीं लगा। राजा ने कहा- स्वामिन्। सोच लो, इतनी धनसम्पदा की गद्दी देने वाला तुम्हें कोई न मिलेगा। स्वामी जी ने एक क्षण भी नही लगाया और बोले- राजन्! तुम भी सोच लेना, इतनी धन-वैभव की गद्दी को ठुकराने वाला तुम्हें कोई और फकीर भी न मिला होगा। यह उनके स्वभाव का प्रेरक उदाहरण है। वे चाहते तो अपार सुख वैभव साधनों में जीवन गुजार सकते थे। मगर उस महायोगी ने जीवन भर अपने लिये कुछ चाहा ही नहीं। संसारिक सुख भोग, सम्पदा आदि उनके लिए अछूत थी।

जर्मन विद्वान् मैक्स मूलर से किसी ने पूछा-आप उन्नीसवी शताब्दी की सबसे बड़ी उपलब्धि, चमत्कार तथा उल्लेखनीय घटना क्या मानते हैं? उन्होंने कहा- मैं इस शताब्दी का सबसे बड़ा चमत्कार व महत्व पूर्ण उपलब्धि यह मानता हूँ- ऋषि दयानन्द का संसार के सामने वेदों का यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत कर देना। वेदों का आम जनता से सम्बन्ध जोड़ देना। वेदों को पढ़ने-पढ़ाने का सभी को अधिकार है, इस मान्यता को स्थापित करना जिसे महा भारत के पश्चात अन्य कोई नही दे सका। यह निर्विवाद सच है कि ऋषि दयानन्द ने वेदोद्धार किया है। उन्होंने संसार को संदेश दिया है कि वेदों की और लौटो। मेरा नही वेदों को मानो।

वेद ज्ञान परमेश्वर का आदेश, उपदेश तथा संदेश है। वेद सबके लिये है और उसे सबको पढ़ने का अधिकार है। वेद ज्ञान ही आज के जीवन और जगत् को विश्वशान्ति, विश्वबन्धुत्व एवं मानवता की शिक्षा तथा प्रेरणा दे सकता है। "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है" इस सत्य को स्थापित करने के कारण ऋषि सदा अमर रहेंगे। स्वामी जी ने संसार को वेदज्ञान के बारे में वैज्ञानिक सोच व दृष्टि दी। यह अपने में महान योगदान है। वेदों के बारे में तरह-तरह की फैली भ्रान्तियों का तर्क, प्रमाण और वैज्ञानिक अर्थ देकर उत्तर दिया। ऋषि ने स्पष्ट किया-भूत-प्रेत, फलित ज्योतिष, ग्रह-नक्षत्रों का प्रभाव, पशुबलि, मांस, मादिरा का सेवन आदि कल्पित बातों का वेदों से कोई सम्बन्ध नही है। बाद में मध्यकाल में इन मिथ्या बातों की वेदों में मिलावट की गई।

संसार के ऊपर ऋषि दयानन्द के प्रत्येक क्षेत्र में अनन्त उपकार हैं। कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जिस पर उन्होंने सत्य, यथार्थ, प्रेरक और व्यवहारिक प्रकाश न डाला हो। स्वयं गृहस्थी न होते हुए भी उन्होंने संसार को मानव-निर्माण की कुंजी "संस्कार-विधि" दी। संस्कारों से ही आचार-विचार एवं जीवन का निर्माण होता है। आज मानव समाज में तेजी से संस्कार हीनता फैल रही है। इसी कारण सच्चे अर्थ में मानव-मानव नहीं बन पा रहा है। जब तक माननीय गुणों से युक्त मनुष्य नहीं बनेगा, तब तक धरती पर सुख-शान्ति, प्रसन्नता, सन्तोष, भाईचारा आदि नहीं बनेगा।

thearyasamaj.org

ऋषि के कतिपण अन्य अमृतमय उपदेश

आचार्य भद्रसेन

स्त्रियों का न्याय स्त्रियाँ करें-राजाओं की स्त्रियों को चाहिये कि सब स्त्रियों के लिए न्याय और अच्छी शिक्षा देवें। और स्त्रियों का न्याय आदि पुरुष न करें, क्योंकि पुरुषों के सामने स्त्री लज्जित और भयमुक्त होकर यथावत् बोल व पढ़ नहीं सकती। -य.भा. १०.२६

विवाह के पश्चात् पति पत्नी कैसे वर्तें- पूर्ण युवा पुरुष जिस ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या के साथ विवाह करें उसके साथ अप्रियाचरण कभी न करें। जो कन्या पूर्ण युवती जिस कुमार ब्रह्मचारी के साथ विवाह करें, उसका अनिष्ट कभी मन से भी न चाहे। इस प्रकार दोनों परस्पर प्रसन्न हुए, अत्यन्त प्रीति के साथ घर के सब कार्यों, को सदा सम्भालते रहें।

-य.भा. ११.३९

उत्तम शिक्षा का महत्त्व- उत्तम शिक्षा के विना मनुष्यों के लिए सुख का अन्य कोई भी आश्रय नहीं। इस लिए सब को उचित है कि, आलस्य, प्रमाद और कपट आदि कुकर्मो को छोड़कर, विद्या प्रचार में सदा प्रयत्न किया करें।

-य. भा. ११.४१

व्यभिचार परित्याग- विवाह समय स्त्री पुरुषों को चाहिये कि व्यभिचार छोड़ने की प्रतिज्ञा कर, व्यभिचारिणी स्त्री और लम्पट पुरुषों का संग सर्वथा छोड़ और ऋतु गामी बनकर, परस्पर प्रीति के साथ पराक्रमयुक्त सन्तानों को उत्पन्न करें।

स्त्री वा पुरुष के लिए अप्रिय, आयु का नाशक, निन्दा के योग्य व्यभिचार के समान दूसरा कोई भी कार्य नहीं है। इस लिए इस व्यभिचार कर्म को सब प्रकार से छोड़ कर और धर्माचरण करनेवाला बन कर पूर्ण अवस्था के सुख का भोग करें।

विद्वानों का सत्कार - मनुष्यों को चाहिये कि सत्पुरुषों की सेवा और सुपात्रों को ही दान दिया करें। जैसे अग्नि में घृत आदि पदार्थों का हवन करके संसार का उपकार करते हैं वैसे ही विद्वानों में उत्तम पदार्थों का दान करके, जगत् में विद्या और अच्छी शिक्षा को बढ़ा के विश्व को सुखी करें।

पति-पत्नी परस्पर कैसा वर्तें- पति पत्नी ने विवाह समय जिन व्यभिचार के परित्याग आदि की प्रतिज्ञा की थी, उसके विपरित कभी न चलें, क्योंकि पुरुष जब विवाह समय स्त्री का हाथ ग्रहण करता है, तभी पुरुष के जितने पदार्थ हैं, वे सब स्त्री के और स्त्री के जितने पदार्थ हैं, वे सब पति के हो जाते हैं। जो पुरुष अपनी विवाहित स्त्री को छोड़, पर-स्त्री के निकट जावे, वा स्त्री पर-पुरुष की इच्छा करें, तो वे दोनों चोर के समान महापापी हो जाते हैं। इसलिए स्त्री की सम्मति के बिना पुरुष, और पुरुष की आज्ञा के बिना स्त्री कुछ भी काम न करे। यही स्त्री पुरुषों में परस्पर प्रीति बढ़ाने वाला काम है कि व्यभिचार को सदा के लिए त्याग देना।

-य. भा. १२.६५

खेतों में विष्ठा आदि मलिन पदार्थ न डाले जाएँ- जो चतुर खेती करनेवाले (कृषक) गौ और बैल आदि की रक्षा करके विचार के साथ खेती करते हैं, वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं। इन्हें खेती में विष्ठा आदि मलिन पदार्थ कभी नहीं डालने चाहियें, किन्तु बीज सुगन्धि आदि से युक्त करके बोने चाहियें। जिससे अन्न भी रोगरहित उत्पन्न होकर मनुष्यादि के बल पराक्रम की वृद्धि को बढ़ावें। -य. भा. १२.७९

सब से पहले अपने शरीर को स्वस्थ बनाओ- मनुष्यों को चाहिये कि सबसे पहले औषधियों का सेवन, पथ्य का आचरण और नियमपूर्वक व्यवहार करके अपने शरीर को रोग रहित रक्खें, क्योंकि इसके बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करने में कोई समर्थ नहीं।

बिना शारीरिक बल के सुख नहीं मिलता- जब तक मनुष्य लोग पथ्य, औषधि और ब्रह्मचर्य के सेवन से शरीर के आरोग्य, बल और बुद्धि को नहीं बढ़ाते, तब तक सुखों के प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते।

-य.भा. १९.१२

शरीर स्वस्थ कैसे करें- मनुष्यों को चाहिए कि उत्तम औषधियों का सेवन, योगाभ्यास और व्यायाम के सेवन से रोगों को नष्ट कर सुख से बर्ते।

-य. भा. १२.८७

उपदेशक और अध्यापक कैसे हों- जो मनुष्य इस संसार में निन्दा, स्तुति, हानि, लाभादिक को सहनेवाले, पुरुषार्थी और सब के साथ मित्रता का व्यवहार करते हुए आप्तजन हों, वे ही सब को सेवने और सत्कार करने योग्य हैं तथा वे ही सब के अध्यापक और उपदेशक होने चाहियें।

-य.भा. ६४.१८

कौन इष्ट फल को प्राप्त करता है- यो मनसा, वाचा, कर्मणा नम्रो जायते, यो रश्मिवत् प्रकाशात्मव्यवहारो भवित। यो जगदीश्वरेण मित्रत्वमाचरति, सर्वैः सह भ्रातृभावं रक्षति, यश्च विद्वद्भ्यो हितं करोति स एव सर्वमिष्टफलं लभते।

- ऋ.भा. ४.२५.२

भाषार्थ- जो मनुष्य मन, वचन और कर्म से नम्र होता है, जिसका व्यवहार सूर्य की रश्मियों के समान प्रकाशमान है, जो सदा प्रभू के साथ मित्रता तथा प्राणिमात्र के साथ भ्रातृभाव रखता है और जो विद्वानों का सदा हित करता है वह ही सब प्रकार के इष्ट फल को प्राप्त होता है।

मनुष्यों को दूसरों के साथ कैसे व्यवहार करना चाहिये- यही धर्मानुकूल व्यवहार है कि जैसी अपनी इच्छा हो, वैसी ही दूसरों की भी समझें। जैसे सब प्राणी अपने दु:ख की इच्छा नहीं करते, और सुख की अभिलाषा करते हैं, वैसे ही दूसरों के लिए भी सब को वर्तना चाहिये।

- ऋ. भा. ५.२०१

मनुष्य कैसे बढ़ते हैं- यथोदकेन नद्यः समुद्राश्च वर्धन्ते, तथैव धर्मयुक्तेन पुरुषार्थेन मनुष्या वर्धन्ते।

-. ५.४१.१४

भाषार्थ- जैसे जल से नदियाँ और समुद्र बढ़ते हैं, वैसे धर्मयुक्त पुरुषार्थ से मनुष्य सदा बढ़ते हैं।

कौन विद्या का अधिकारी है- हे अध्यापक और विद्वानों! आप

thearyasamaj.org

लोग जो जितेन्द्रिय, आप्त स्वभाव, सर्दी गर्मी, सुख, दुःख हर्ष शोक, निन्दा, स्तुति आदि द्वन्द्वों के सहन करनेवाले, निरभिमानी, निर्मोही, सत्याचरण परोपकार-प्रिय और ब्रह्मचर्य पालन करनेवाले विद्यार्थी हों, उनको ही पुरुषार्थ से विद्वान् बनाओ।

– ऋ. भा. ५.४३.७

कौन सुखी होते हैं– जो सूर्य के सदृश विद्या (प्रकाश), माता के समान कृपा, नदी के समान उपकार, और खम्भे के सदृश्य निश्चल धारणावाले होते हैं, वे ही श्रीमान् और सदा सुखी रहते हैं।

देश और जाति की भूषण देवियाँ– जो स्त्रियाँ प्रभात वेला के समान अपने पति आदियों को सूर्योदय से पहिले जगा देती हैं; घर और बाहर के स्थानों को सदा साफ सुथरा रखती हैं, घर में आनेवाले पति आदियों के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ी रहती है और हमेशा सबको विज्ञान (उत्तम विचारों) की शिक्षा देती हैं, वे देवियाँ ही देश और कुल की भूषण रूप होती हैं। –ऋ. भा. ५.८०.२

मेघोन्नति अर्थात् (वर्षा) कैसे होती हैं–मनुष्यैर्येन मेघेन सर्वस्य पालनं जायते तस्योन्नतिः वृक्षप्रवापेन, वनरक्षणेन, होमेन च संसाधनीय, यतः सर्वस्य पालनं सुखेन जायेत।।

–ऋ. भा. ५.८३.४

भाषार्थ– जिस मेध से सबका पालन– पोषण होता है सब मनुष्यों को उसकी उन्नति, वृक्ष लगाने, वनों की रक्षा करने और यज्ञ करने से हमेशा करनी चाहिये। जिससे सब का पालन पोषण सुख पूर्वक हो सके।

कौन राजा इस लोक और परलोक में सुखी होता है– जो राजा स्वयं सत्यवादी, तथा अन्य सत्यवादियों को सदा प्रसन्न रखता है, विद्वज्जनों से विद्या और विनय को प्राप्त कर सदा अपनी प्रजा के सुख की कामना करता है, यज्ञ के द्वारा तथा उत्तम सुगन्धित फल-पुष्पयुक्त वृक्षों और लता आदि के द्वारा सबको सुख देता हुआ, जल, ओषधि, वृक्ष, गाय, घोड़ा, मनुष्य आदि की सुख वृद्धि के लिए सदा परमेश्वर तथा परलोक में सुख को प्राप्त करता है। –ऋ. भा. ६.३९.५

ब्रह्मचर्य का फल– जो मनुष्य ब्रह्मचर्य को प्राप्त होकर फिर उसका लोप नहीं करते वे सब प्रकार के रोगों से रहित होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होते हैं। –स.प्र. ३ समु.

राज्य कब बढ़ता और कब नष्ट होता है– जब तक मनुष्य धार्मिक, सदाचारी रहते हैं, तभी तक राज्य बढ़ता है। और जब दुष्टाचारी हो जाते हैं, तब नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। –स.प्र. ६ समु.

व्यभिचार से हानि– जैसा बल और बुद्धि का नाशक व्यवहार व्यभिचार और अतिशय विषयासक्ति है, वैसा और कोई नहीं।

–स. प्र. ६ समु.

कौन-सा धन अपना समझना चाहिये– हे मनुष्यों ! जो धर्मानुसार पुरुषार्थ से धन प्राप्त होता है, उसे ही अपना धन समझना चाहिये। न कि अन्याय से उपार्जित धन को। इसलिए जिस प्रकार से धर्म पूर्वक पुरुषार्थ से धन प्राप्त हो, उसे अपना समझना चाहिये।

आर्य समाज के अविस्मरणीय शहीद नाथुराम जी

महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती की धरोहर स्वरूप प्राप्त बलिदानी परम्परा का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि यह वह अग्नि है जिसे बुझाने का जितना प्रयास किया गया है, कह उतनी ही अधिक तीव्र होकर धधकी है। वेद धर्म के दीवानों ने इसे प्रचण्ड रखने के लिए अपने आप को समिधा बना कर इस बलिदानी हवन कुण्ड में झोंक दिया। आर्यवीरों की इसी बलिदानी परम्परा में सिन्ध प्रान्त के **नाथूराम** जी का नाम सदा बडे आदर के साथ लिया जाता रहेगा।

सन् १ अपैल १९०४ को एक सम्भ्रान्त ब्राह्मण पं. कीमत राय जी के यहां जन्मे इकलौते पुत्र नाथुराम को बडे लाड प्यार से पाला गया। नाथुराम जी बाल्यकाल से ही गम्भीर प्रकृति के थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी के अमर बलिदान का नाथुराम जी के हृदय पर प्रभाव पडा तथा उन्होंने उठती जवानी में आर्यसमाज में आकर्षण अनुभव करते हुए १९२७ में अपने सगे सम्बन्धियों व परिजनों की चिन्ता छोड आर्य समाज में प्रवेश किया तथा तन्मय हो पूरी लगन से धर्मप्रचार में जुट गए। जब १९२९ में आपके गृह नगर हैदराबाद में आर्य युवक समाज की स्थापना हुई तो आप भी इसके सदस्य बने। वादविवाद में आप पौराणिकों को उत्तर देने में आनन्द अनुभव करते थे।

१९३१ में मिर्जाईयों की अंजुमन द्वारा जब हिन्दु देवी देवताओं का गन्दा स्वरूप पेश किया जाने लगा तो तुलसी राम जी कुपित हो उठे। वह उन्हें उत्तर देने के लिए आगे आए। इसी सन्दर्भ में एक पुस्तक ''सारीखे इस्लाम'' क़ा सिन्धी भाषा में अनुवाद प्रकाशित करवा दिया जबके मूल पुस्तक किसी ईसाई की लिखी थी। मौलवियों से कुछ प्रश्न भी पूछे। कोई उत्तर न बन पाने पर मिर्जाईयों ने मुसलमानों को नाथूराम के विरूद्ध उकसना शुरू किया। घृणा भरा वातावरण तैयार करने के बाद १९३३ में नाथूराम जी के विरुध अभियोग चला दिया। कोर्ट में यह सिद्ध होने के बाद कि यह नाथूराम का लिखा न होकर केवल अनुवाद मात्र है तो भी उन्हें सैशन सुपुर्द कर दिया गया, जहां उन्हें डेढ़ वर्ष का करावास तथा एक सहस्र रूपए का दण्ड सुनाया गया। इस अन्याय पूर्ण निर्णय से सिन्ध के प्रत्येक परिवार में शोक की लहर फैल गई। जबकि मिजाईयों में मूल ईसाई लेखक के विरूध एक शब्द बोलने का भी साहस नहीं हुआ।

चीफ कोर्ट में इस अन्याय के विरूध अपील की गई। २० दिसम्बर १९३४ को बैंच ने केस पर निर्णय देना था, हाल खचाखच भरा था। अकस्मात् न्यायालय में एक भयंकर चीत्कार सुनाई दी। अब्दूल क्यूम नामक एक मतान्ध पठान ने मौका पाकर नाथुराम जी के पेट में छुरा घोंप दिया। पं. लेखराम के समय के अनुरूप ही धर्मवीर नाथूराम की अन्तडियां बाहर निकल आईं। यहीं पर ही नाथूराम जी अमरत्व को प्राप्त हुए। हत्यारे को मोके पर ही पकड लिया गया। शहीद को अन्तिम विदा देने भारी भीड उमड आई। नगर भर में हडताल की गई। पूर्ण वैदिक रीति से संस्कार हुआ। इससे समाज में एक नया जोश पैदा हुआ। हत्यारे को फांसी हुई।

डा. अशोक आर्य

चलभाष ०९८७६४ २७९३५/फोनोफैक्स-०१६६८-२२७९३५

thearyasamaj.org

हिन्दी गद्य के प्रथम उपासक महर्षि दयानन्द सरस्वती

डा. अशोक आर्य

महर्षि दयानन्द सरस्वती को आज सर्वत्र सुधार कल्पतरू के रूप में जाना जाता है तथा उनके विभिन्न कार्यों के कारण उन्हें विभिन्न संज्ञाएं दी गई हैं, किन्तु जिस क्षेत्र को महर्षि दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज की अत्यधिक देन है, आज भी न जाने क्यों वह पक्ष उपेक्षित पडा है? यह है ''हिन्दी भाषा व साहित्य को उनका योगदान।'' स्वामी जी की हिन्दी सेवा का मूल्यांकन करते समय रोमांचित हो उठते हैं, क्योंकि स्वयं अहिन्दी भाषी (गुजराती) होते हुए भी हिन्दी गद्य के सर्व प्रथम प्रणेता भी स्वामी दयानन्द सरस्वती ही सिद्ध होते हैं, जब कि हिन्दी गद्य में सर्व प्रथम प्रकाशित आत्मकथा, जीवनी, यात्रा वृत्तान्त, संस्मरण, पत्र साहित्य, सत्य रोमांचक कथा, अनुदित एवं प्रत्यानुदित आत्मकथा आदि जीवनी परक साहित्य स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का ही प्राप्त होता है। सभी साहित्यिक विधाएं आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य की सर्वाधिक आधुनिक विधाएं मानी जाती हैं।

संस्कृत में जीवनी साहित्य पहले से ही प्रचलित था किन्तु गद्य की आधुनिक विद्या, जो कि जीवनी का ही एक रूप है, संस्कृत में भी नगण्य ही था। इस का कारण है कि हमारे पूर्वज आत्मश्लाघा कतई पसन्द नहीं करते थे। इसी लिए हमारे पूर्वजों के जीवनों का आधार या तो मात्र अनुमान था या फिर अन्त: व बाह्य साक्ष्य ही हैं। इस कारण सत्यान्वेषण सम्भव ही नहीं है।

हिन्दी साहित्य पर ऋषि दयानन्द व आर्य समाज की छाप को प्रकाशित करने के लिए कुछ एक शोध भी हुए हैं। उनमें हिन्दी आत्मकथा पर डा. विश्वबन्धु, हिन्दी जीवनी पर डा. शान्ति खन्ना, गद्य साहित्य पर डा. चन्द्रभानु सीतराम सोनवणे तथा डा. मंजुलता विद्यार्थी, हिन्दी पत्र साहित्य पर डा. कमल पुंजाणी ने सर्वोत्तम कार्य किया है। मेरा शोध ग्रन्थ (हिन्दी जीवनी साहित्य को आर्य समाज का योगदान) भी इसी हिन्दी जीवनी साहित्य धारा के शोध की एक कडी है।

हिन्दी जीवन साहित्य की अधिकारिक विदुषी डा. शान्ति खन्ना ने तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवनी साहित्य में भी अनेक त्रुटियों की और इंगित किया है। उन्होंने स्वामी जी की दो जीवनियों का उल्लेख किया है, किन्तु न जाने क्यों वह हिन्दी की सर्व प्रथम जीवनी तक नहीं पहुंच पाई। इसी प्रकार हिन्दी जीवनी पर शोध करने वाली एक अन्य शोधार्थी चन्द्रावती सिंह भी इस निष्कर्ष तक नहीं पहुंच पाई। जिस प्रकार व हिन्दी गद्य की प्रथम जीवनी नहीं खोज पाईं, उसी प्रकार वह स्वामी दयानन्द की आत्मकथा को भी नहीं छू सकीं। इसका कारण सम्भवतया यह हो सकते है कि उन्होंने हिन्दी आत्मकथा विधा को हिन्दी जीवनी के अन्तर्गत स्वीकार ही न किया हो। मैंने अपने शोध ग्रन्थ में इस कमी को पूरा करने का प्रयास करते हुए स्पष्ट किया है। मेरे शोध में इस बात का निष्कर्ष निकालते हुए इस प्रकार लिखा है:

''मेरे विचार में १८८१ में गोपाल राव हरि शर्मा ने दयानन्द दिग्विजयार्क, १८८८ में जगन्नाथ कृत महर्षि दयानन्द चरित, १८९८ में लाला लाजपत राय कृत तथा गोपाल दास शर्मा कृत महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनका काल, १८९९ में पं. लेखराम कृत तथा जगदम्बा प्रसद द्वारा अनुदित स्वामी विरजानन्द चरित था। इसके द्वितीय संस्करण का सम्पादन डा. भवानी लाल भारतीय ने किया। इन इक्कीस ग्रन्थों में से तीन ग्रन्थ तो केवल स्वामी दयानन्द चरित ही हैं। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि किसी भारतीय भाषा से हिन्दी में अनुदित प्रथम दो जीवनी ग्रन्थ, 'गुरू विरजानन्द चरित लेखक पं. लेखराम, दूसरा क्रास्टोफर कोमलम्बस भी आर्य समाजी ने अनुवाद किया तथा तीसरा दयानन्द चरित पं. लेखक पं. लेखराम उर्दू से हिन्दी में आए।''

हिन्दी गद्यात्मक आत्मकथा के क्षेत्र में ''ऋषि दयानन्द स्वरचित आत्म चरित'' ऐतिहासिक व साहित्यिक महत्त्व आज भी सर्वविदित हो चुका है। यद्यपि स्वामी जी आत्मश्लाघा के विरूद्ध थे, किन्तु तात्कालीन भक्तों के बार बार विगत जीवन के बारे में पूछने पर उन्होंने अपना अति संक्षिप्त गद्यात्मक आत्म चरित लिख डाला। यह आत्म चरित हिन्दी साहित्य में सर्व प्रथम होने के अतिरिक्त थोडे शब्दों में अत्यधिक कह जाने के कारण इसका सहित्यिक महत्त्व भी बढ गया है। फिर उन्होंने तथ्यों का निरूपण भी बहुत सरल ढंग से किया है। यथा ''मैंने पांचवें वर्ष में देवनागरी अक्षर पढना आराम्भ किया।'' मूर्ति पूजा से वैराग्य के बारे में लिखते हैं ''अत:. चूहे की यह लीला देख मेरी बाल बुद्धि को ऐसा प्रतीत हुआ जो शिव अपने पाशुपतास्त्र से बडे बडे प्रचंड दैत्यों को मारता है, क्या इसमें एक निर्बल चूहे को भगा देने की शक्ति नहीं है।'' इस प्रकार प्रत्येक पग पर उनकी भाषा लालित्य प्रवीणता, सरलता, उत्सुकता, कर्मठता, उत्साह, दृढ निश्चय व रोमांच लिए हुए है। उनके इन शैलीगत गुणों से तो कई बार उनकी मातृभाषा हिन्दी होने की शंका उठ खडी होती है।

यदि आत्मकथा लेखक अपने दोषों को छुपाकर केवल गुणों का ही वर्णन करता है तो वह न केवल अन्धेरे में ही है अपितु वह तो आत्मश्लाघा मात्र ही रह जाती है। अपनी उन्नति वास्तव में अपने अवगुणों को प्रकाशित करने में निहित है। अत: ऐसे चित्रण में भी स्वामी जी पीछे नहीं हटे, उन्होंने: लिखा है कि ''मैं यहां से हिलने के स्थान पर मर जाना ही उत्तम समझता हूँ।'' ऐसे अनेक गुणों से युक्त यह लघु रचना अलंकार विहीन, छन्द विहीन होते हुए आकर्षक व गतिशील है। सामान्य व लघु होते हुए भी विशिष्ट व महाकाव्य है। यह मानवीयता, सरसता व मथुरता के गुण भी संजोए हुए है। इन्हीं विविध विशेषताओं के पश्चात् भी हिन्दी गद्य साहित्य में यह आत्मकथा के रूप में स्वीकार हो चुकी है। डा. सोनवणे ने अपने शोध ग्रन्थ ''हिन्दी गद्य साहित्य'' में इस बात को स्वीकारा है, जबकि डा. विश्वबन्धु ने अपने शोध ग्रन्थ ''हिन्दी आत्मकथा साहित्य'' में यह प्रतिपादित किया है कि हिन्दी गद्य में सर्वप्रथम प्रकाशित आत्मकथा होने का श्रेय भी इसी पुस्तक को ही दिया जाता है। मेरे शोध ग्रन्थ ''आर्य समाज का हिन्दी जीवनी सहित्य को योगदान'' का निष्कर्ष भी इन दोनों शोधार्थियों से मेल रखता है। इस प्रकार इन तीनों मनीषियों ने विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया, स्पष्ट दिखाई देता है।

जब हम हिन्दी पत्र साहित्य पर दृष्टि पात करते हैं तो हमें उनकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय मिलता है। भारतीय नव जागरण के प्रणेता होने के नाते उन्हें अत्यधिक पत्र व्यवहार भी करना पडता था। यह पत्र व्यवहार

thearyasamaj.org

आरम्भिक काल में तो संस्कृत में रहा किन्तु बाद में हिन्दी में किया गया। उनके अनेक पत्र आज भी उपलब्ध हैं। इन पत्रों का सर्व प्रथम संकलन सन् १९१० ई. में महात्मा मुन्शीराम ने ''ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र व्यवहार प्रकाशित किया। इसके अनन्तर प. भगवदत्त जी व पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी आदि ने भी ऐसे संकलन प्रकाशित किये। इस प्रकार १९१० से १९३५ तक हिन्दी पत्र साहित्य पर छः ग्रन्थ प्रकाशित हुए। यह कहते हुए हमें गर्व होता है कि १९२२ में प्रकाशित स्वामी विवेकानन्द के पत्रों के अतिरिक्त शेष सभी के सभी ग्रन्थ महर्षि दयानन्द के पत्रों से ही सम्बन्धित हैं। पं. भगवदत्त जी की तो यह उत्कठ इच्छा थी कि महर्षि दयानन्द सरस्वती का एक एक शब्द सुरक्षित रखा जाए। इसी इच्छा को पूर्ण करने का कार्य इन 'ऋषि दयानन्द के पत्र व विज्ञापन' सम्बंधी साहित्य ने किया।''

हिन्दी पत्र साहित्य समबन्धी टिप्पणियों से पता चलता है कि बहुत से इतिहास लेखकों ने तो पत्र साहित्य विधा का उल्लेख ही नहीं किया। यदि किसी ने किया है तो वह ऋषि दयानन्द सरस्वती से अछूते रहे और किसी ने इसे छूने का प्रयास भी किया तो असंगति की कोई कसर नहीं उठा रखी। डा. हरवंश लाल शर्मा व डा. नगेन्द्र दोनों ने ही एक समान मत प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि आलोच्छ युग में पत्र साहित्य विषयक दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए। महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती) ने सन् १९०४ में स्वामी दयानन्द सम्बन्धी पत्रों का संकलन किया। यह युग का नहीं समस्त हिन्दी साहित्य का प्रथम प्रकाशित ग्रन्थ था।

संक्षेप में कह सकते हैं कि ऋषि दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी साहित्य रूपी पौधे को अपने रक्त से सींचकर इसे बडा किया। इसमें हिन्दी आत्मकथा, हिन्दी गद्य जीवनी, हिन्दी पत्र साहित्य, संस्मरण, यात्रा वृतान्त, सत्य रोमांच कथा आदि अनेकविधाएं दे कर इसे पल्लवित किया। इस प्रकार हिन्दी साहित्य ऋषि के जीवन दर्शन व आदर्शों से ओत प्रोत है तथा हिन्दी प्रेमियों का प्रेरणा सोत बन गया है।

अत: आज यह सर्वसिद्ध हो चुका है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जहां भारतीय स्वाधीनता संग्राम के प्रथम जन्मदाता के रूप में सामने आए हैं, रूढियों, कुरीतियां के विरूद्ध डटकर खडे होने वाले प्रथम वीर पुरुष थे, वहां उन्होंने हिन्दी साहित्य को सत्यार्थ प्रकाश सरीके महान दार्श निकग्रन्थ भी दिये। जिन्होंने हिन्दी गद्य साहित्य को आत्मकथा रूपी एक नर्स विधा भी प्रदान की। फिर भला उनके शिष्य उनसे पीछे क्यों रहते? उन्होंने भी हिन्दी गद्य साहित्य में जीवनी व पत्र साहित्य के रूप में दो अन्य नवीन विधाएं जोडकर हिन्दी जगत् को अपना ऋणि बना दिया। इन्हीं विधाओं में रोमांचक सत्य कथा, यात्रा कथा, संस्मरण आदि की विधाएं जुडकर सोने पर सुहागा का काम किया। इस प्रकार इन विधाओं के लिए ऋषि दयानन्द और आर्य समाज को प्रवर्तक के रूप में स्वीकार किया गया है। भावी शोधकर्ता सम्भवतया हिन्दी की अन्य साहित्यिक विधाओं में भी ऋषि दयानन्द व आर्य समाज का योगदान खोज पाएं। अत: समाज सुधारक, स्वाधीनता के प्रथम उद्घोषक के साथ ही साथ ऋषि दयानन्द सरस्वती के सहित्यिक रूप के आंकलन की भी आज आवश्यकता है।

डा. अशोक आर्य
चलभाष : ०९७१८५२८०६८

विचार शक्ति का चमत्कार
(समस्या और समाधान)

प्रिय पाठको,

हर व्यक्ति यही चाहता है कि उसके जीवन में समस्याएं नहीं आएं। लेकिन अपने पाप-पुण्य कर्माशय अनुसार जीवन में समस्याएं आती रहती हैं जिन्हें हम कदापि पसंद नहीं करते। कोई अस्पताल में भर्ती है तो किसी को स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं हैं किसी को धन कही फंस गया है तो किसी का कोई कार्य नहीं हो रहा है इत्यादि समस्याएं हमें घेरे रहती हैं। पर यदि नहीं चाहते हुए भी यदि हमारे जीवन में समस्याएं आती हैं तो क्या करना चाहिए, आइए इस पर विचार करें।

(१) समस्याओ में अलगाव अथवा निर्लिपता पैदा करना- हम जितना समस्याओं पर विचार करते हैं कहते हैं और वे और भी ज्यादा तीव्र हो जाती हैं। दूसरों की समस्याओ को यदि हम सोचें तो हमारा दुःख हमें बहुत कम लगने लगेगा अत: समस्याओ से ध्यान हटाकर सकारात्मक सोच को दिमाग में भर देना चाहिए ताकि हमारे अंतर लड़ने की क्षमता पैदा हो।

(२) कभी किसी के साथ बुरा नहीं होता- परमात्मा दयालु है अत: हमारे कर्मों अनुसार वह हमें दंड देता है ताकि हम गलत काम दोबारा नहीं करें। हमारे उद्देश्य के विपरीत यदि हमें फल प्राप्त होता है तो वह हमें दंडात्मक प्रतीत होता है लेकिन वास्तव में वह हमारे भले के लिऐ ही हो रहा है।

(३) समस्या है तो समाधान भी है। - बजाय इस बात पर बहस करने से कि समस्या क्यों आयी, उसके समाधान पर यदि विचार किया जाए तो ज्यादा साथर्क होगा। एसा करने से हम निरंतर आगे बढ़ते रहते हैं।

(४) जड़ वस्तू का स्वभाव होता है कि जिस बिंदु पर वह स्थिर है वहीं से नीचे की ओर वह अग्रसर होती हैं।

यह हमारी कुशल बुद्धि पर निर्भर करता है कि हम नीचे की ओर जाने की प्रवृति को रोककर उर्ध्वगामी होने का प्रयास करें। ऐसा करने से हमारा जीवन निरंतर आगे बढ़ता रहता है।

(५) अपनी समस्याओं को अपना हथियार बनाएं।

अपनी नकारात्मक प्रवृत्तिओं की और समर्पित होते हुए उन्हें स्वीकार करते हुए, वही कार्य करना चाहिए जिसे करने में भय पैदा होता हो उदाहरणार्थ मंच से बोलना, लोगों से मिलना जुलना, वाहन चलाना सीखना, शास्त्रार्थ करना इत्यादि, ऐसा करने से हमारा भय दूर होता है और हम समान्य जीवन जीना सुरू कर देते है।

(६) बुरे से बुरा प्रतीत हो रहे व्यक्ति से प्रेम करना।

व्यक्ति कोई बुरा नहीं होता या कोई वस्तु बुरी नहीं होती, केवल उस वस्तु का सदुपयोग करना आना चाहिए तो वह वस्तु भी अच्छी लगने लगती है। जैसे कि सॉप का जहर कहने सुनने में बहुत ही बुरा प्रतीत होता है लेकिन उसके सदुपयोग के बारे में विचार करना चाहिए। इसी तरह से समस्याएं हमें बहुत बुरी प्रतीत होती है लेकिन उसमे हमारी क्या भलाई छिपी रहती है उस पर विचार करना चाहिए।

अंत में मैं यही कहूंगा कि मत कहो अपने खुदा से कि आपकी समस्या कितनी बड़ी है बल्कि कहो अपनी समस्या से कि आपका खुदा कितना बड़ा है।

- राजकुमार भगवती प्रसाद गुप्त

thearyasamaj.org

''यज्ञ-द्वारा क्षय रोग चिकित्सा''

क्षय रोग को क्षय, शोध, यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, तिपेदिक, टी.बी. भी कहा जाता है। क्षय रोग आज समस्त विश्व में फैला हुआ है। संसार में जितनी मृत्यु होती है उसका आठवां भाग केवल क्षय रोग से ही होता है।

वैसे तो यह रोग एक छूत रोग है फिर भी हमारे जीवन शैली के विकृत ढंग से भी इस रोग के पनपने की बहुत आशा है। वनस्पति घी, सिगरेट, शराब, बीडी, चाय का अधिक सेवन करना, नमी व सीलन वाली जगह में रहना, प्रकाश व शुद्ध वायु का अभाव, धूल व गन्दगी की अधिकता, शारीरिक निर्बलता, पौष्टिक भोजन की कमी, तनाव पूर्ण जीवन इस रोग के मुख्य कारण हैं।

इस रोग में निम्न प्रकार के लक्षण दिखाए पडते हैं।

१) खांसी, अतिसार, पसली का दर्द, स्वर भंग, गला बैठना, भोजन में अरुचि उत्पन्न होना।

२) कमजोर व दुबला पतला शरीर उसकी खांसी के साथ साथ खून भी निकलता हो तो उसमें क्षय रोग की आशंका है।

क्षय रोग के कीटाणु त्वचा अथवा श्लेष्म कला (Mucous membrane) को बेधकर, श्वास के साथ, भोजन के द्वारा तथा जनन मार्ग से हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं।

एलोपैथी पद्धति को इस बिमारी को जड से समाप्त करने की सफलता नहीं मिल पाई है। किंतु ''वेदों'' में क्षय रोग को पूर्णतया नष्ट करने का विधान है, वेदों में ऐसे कई मन्त्र आते हैं जिसका अर्थ होता है कि क्षय रोग को समूल नष्ट किया जा सकता है।

संसार की प्राचीनतम पुस्तक ''वेद'' का वचन है-

''मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्षमादुत राजयक्षमात्।
ग्रहिर्जग्रास यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तमेनम्।।''

अर्थात्-हे व्याधिग्रस्त! तुम को सुख के साथ चिरकाल तक जीने के लिए गुप्त यक्ष्मा और राजयक्ष्मा रोग से आहुति द्वारा छुडाता हूं जो इस समय इस प्राणी को पुराने रोग ने ग्रहण किया है उससे वायु तथा अग्नि देवता इस को अवश्य छुडावें।

अर्थात् क्षय रोग का आहूतियों द्वारा नष्ट करने की ओर संकेत किया है। अग्नि तथा वायु भी उस यज्ञ प्रक्रिया की ओर ही इशारा कर रहे हैं।

''विद्य वै ते जान्मान्य जानं यतो जायान्म जायसे
कथं ह तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हर्विगृहे।''

अर्थात्- हे क्षयरोग हम निश्चित से जानते हैं कि तू कहाँ से उत्पन्न होता है, तू कहां किस प्रकार की हानि कर सकता है। जिसके घर में हम विद्वान नाना प्रकार की औषधियों से अथवा रोगनाशक हवि, अन्न द्वारा अग्निहोत्र करते हैं जिससे क्षय रोग दूर हो जाता है।

अर्थववेद के १९ वे काण्ड के ३८ वे सूत्र का पहला मन्त्र भी क्षय रोग की चिकित्सा के बारे में बता रहा है-

''न तं यक्ष्मा अरून्धते नैनं शपथो अश्नुते
यं भेषजस्य गुल्गुर्कोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते
विष्णत्र्वस्तस्माद् यक्ष्या मृगाद् अश्वा इवेरते।।''

अर्थात् जिसके शरीर को रोगनाशक गूगल का उत्तम गंध व्यापता है, उसको राजक्ष्यमा के रोग पीडा नहीं देते। उनसे सब प्रकार के यक्ष्मा रोग शीघ्रगामी हिरणों के स्थान कांपते हैं, डर कर भाग जाते हैं।

आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रन्थ ''चरक'' में भी यक्ष्मा को दूर करने के लिए यज्ञ की ही प्रार्थना की गयी है-

''प्रयुक्तया यथा चेष्टया राजयक्ष्मा पुरा जितः।
तां वेदविहितामिष्टिमारोग्यार्थी प्रचोजयेत्।।''

अर्थात् जिस यज्ञ के प्रयोग से प्राचीन काल में राजयक्ष्मा रोग नष्ट किया जाता था, आरोग्य चाहने वाले मनुष्य को उसी वेद विहित यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए।

आयुर्वेद के परम विद्वान श्री चरक ऋषि ने अपने ग्रन्थ में क्षयरोग की नाना प्रकार की चिकित्सा का वर्णन किया है और अन्त में इस रोग को यज्ञ के द्वारा दूर किया जा सकता है, यह भी बताया है। उन्होनें यज्ञ-चिकित्सा को क्षयरोग की सर्वोत्तम चिकित्सा बताया है।

मात्र वेद में लिखा गया है इसीलिए हम यह मान लें कि यज्ञ ही क्षय रोग की चिकित्सा की सर्वोत्तम विधि है, यह बात नहीं है। महान् आयुर्वेदाचार्य श्री चरक ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि यज्ञ द्वारा बिना किसी कुप्रभाव के क्षयरोग को नष्ट किया जा सकता है। इस बात के लिए हमारे पास अनेक परीक्षणों के परिणाम हैं जिससे यह स्पष्ट हो जाएगा कि यज्ञ क्षयरोग के लिए कितना फलदायी है जो निम्नलिखित हैं-

१) कांच की- १२ शुद्ध शीशियां ली गयी उनमें दूध, फल, मांस इत्यादी वस्तुएं भर दीं अब ६ शीशियों को एक ओर रख दिया बाकी ६ शीशियों को दूसरी ओर रखा। एक ओर वाली शीशियों में बाग बगीचे की शुद्ध हवा भर दी ओर दूसरी ओर की शिशियों में यज्ञ की गैस भरी गयी। कुछ दिन बाद परिक्षण किया गया ओर यह पाया कि बगीचे की वायु से भरी शीशियों में सडांध शीघ्र प्रारम्भ हुआ और तेजी से बढ़ा। हवन गैस वाली शीशियों मे सडांध देर से प्रारम्भ हुआ और धीरे धीरे बढ़ा। जिससे सिद्ध हुआ कि हवन की गैस सडांध को रोकती है। यही प्रक्रिया क्षय रोग में अपनाई जा सकती है हवन गैस से सड़े हुए फैफड़ों को सड़ंने से रोका जा सकता है और नित्यप्रति हवन करने से उसकी गैस फैफड़ो में पहुचने से मवाद तुरन्त सूख जाता है और क्षत अच्छा हो जाता है।

२) दूसरे परीक्षण में शरीर के बाहर के घावों को हवन गैस मिश्रित पानी से धोने से वे घाव शीघ्र सूख गए। इसी प्रकार फेफड़ों के क्षत शीघ्र सूख सकते हैं यह बात सिद्ध हो गयी।

अनेक चिकित्सकों, विद्वानों व डाक्टरों की भी राय है कि यज्ञ द्वारा क्षय रोग तत्काल मिटता है। निम्नलिखित विद्वानों की राय से यह स्पष्ट होता जाएगा-

१) मद्रास के डॉ. करनल किंग ने कहा कि घी, चावल और केसर

thearyasamaj.org

मिलाकर जलाने से रोग के किटाणुओं का नाश होता है।

२) फ्रांस के प्रो. टिलवर्ट साहब कहते हैं कि, जलती हुई खांड के धुएं में वायु शुद्ध करने की बडी शक्ति होती है जिससे हैजा, टी.वी. चेचक इत्यादि का विष शीघ्र नष्ट हो जाता है।

३) डा. टाटलिट का मानना है कि मुनक्का, किशमिश इत्यादी सूखे मेवों को अग्नि में डालने से टाइफाईड आदि के किटाणु शीघ्र समाप्त हो जाते हैं।

४) फ्रासं के प्रसिद्ध डा. हैफकिन का कहना है कि घी जलाने से रोग - कृमि मर जाते हैं।

५) कविराज सीताराम शास्त्री का मानना है कि जो महारोग औषधी भक्षण से दूर नहीं होते वे वेदों द्वारा बताए गये यज्ञ-चिकित्सा से दूर हो जाते है।

इसी प्रकार अनेक रोगियों के अनुभवों से भी यह सिद्ध होता है कि टी.बी. के इलाज में यज्ञ की एक अहम् भूमिका है। प्रेमनारायण श्रीवास्तव होशंगाबाद में रहते थे उनका कहना था कि वे एक साल से टी.बी. से पीड़ित थे। एलोपैथी डाक्टरों द्वारा निराश होकर जब वे क्षय रोग विशेषज्ञ डा. फुन्दनलाल, जो टी.बी. सेनीटोरियम, जबलपुर के अध्यक्ष की शरण में आए और उनसे यज्ञ चिकित्सा द्वारा इलाज करवाया तो वे मात्र तीन माह में पूर्ण स्वस्थ हो गये।

- संदीप आर्य
०९९६९०३७८३७

पत्राचार पाठ्यक्रम

वैदिक मिशन मुम्बई की ओर से इस वर्ष निम्नलिखित विषयों पर पत्राचार पाठ्यक्रम पारम्भ हो रहा है। स्वाध्याय प्रेमी पाठकों से निवेदन है कि पत्राचार पाठ्यक्रम का वार्षिक शुल्क एक सौ रुपये भेजकर सदस्य भाग लें।

वार्षिक शुल्क

१)	अथर्ववेद	१००/-
२)	संस्कृत शिक्षण	१००/-
३)	गीता	१००/-

वार्षिक शुल्क निम्न पते पर भेजकर सदस्यता प्राप्त करे, वैदिक ज्ञान भण्डार से लाभ प्राप्त करें।

सोमदेव शास्त्री
डी-३०९, मिल्टन एपार्टमेन्ट,
जुहु कोलिवाडा,
मुम्बई - ४०० ०४९.
मो. : ०९८६९९६८१३०

डा. सोमदेव शास्त्री की "अमेरिका यात्रा"

आर्य प्रतिनिधि सभा अमेरिका के चौबीसवें आर्य महासम्मेलन (३१ जुलाई तथा १-२-३ अगस्त २०१४) के अवसर पर डा. सोमदेव शास्त्री- (अध्यक्ष वैदिक मिशन मुम्बई) आर्य प्रतिनिधि सभा अमेरिका के निमन्त्रण पर अमेरिका गये। २३ जुलाई को मुम्बई से शिकागो गये। वहां पर २५ जुलाई को मुम्बई प्रसिद्ध आर्य नेता डा. एस. सी. सोनी के ८० वें जन्म दिवस पर आयोजित कार्यक्रम में सम्मिलित हुए तथा २६-२७ जुलाई को आर्य समाज शिकागो के वार्षिकोत्सव के अवसर पर डा. सोमदेव शास्त्री के प्रभाव शाली प्रवचन हुए। २६ जुलाई को उत्सव के शुभारम्भ में भारतीय ध्वज डा. सोमदेव शास्त्री ने तथा ओ३म ध्वजा का उत्तोलन स्वामी प्रणवानन्द जी सरस्वती (दिल्ली) ने किया।

३० जुलाई को आर्य प्रतिनिधि सभा अमेरिका के प्रधान डा. रमेश गुप्ता के घर पर यज्ञ की महत्ता के विषय में प्रवचन हुए।

३१ जुलाई को आर्य महासम्मेलन के प्रथम दिवस पर योग एवं स्वास्थ्य विषय पर व्याख्यान हुए। १ अगस्त २०१४ को वेदों द्वारा समस्याओं का समाधान तथा ३ अगस्त को संध्या एवं यज्ञ की महत्ता और अनिवार्यता पर सारगर्भित प्रवचन हुए।

३ अगस्त रविवार को आर्य समाज लौंग आइलैण्ड़ न्युयार्क में यज्ञ पर व्याख्यान हुए। आर्य समाज न्युयार्क के वेद प्रचार सप्ताह के अवसर पर यज्ञ की महिमा, स्तुति प्रार्थना उपासना आदि विषयों पर प्रवचन हुए, जिस की अमेरीका वासियों ने बहुत प्रशंसा की। आर्य समाज न्युयार्क के प्रधान श्री चन्द्रभानु जी आर्य एवं धर्मपत्नी श्रीमती लक्ष्मी देवी ने आप का बहुत ही सम्मान किया। डा. विजय आर्य और उनके बडे भाई डा. यश आर्य, डा. रमेश गुप्ता, श्री विश्रुत आर्य तथा श्री गिरीश खोसला ने श्री डा. सोमदेव शास्त्री को प्रशंसनीय सहयोग दिया। सभी महानुभावों को वैदिक मिशन मुम्बई की ओर से हार्दिक धन्यवाद।

सन्दीप आर्य
मन्त्री-वैदिक मिशन मुम्बई
०९९६९०३७८३७

thearyasamaj.org

केनोपनिषद्

१. कामनाएँ कम करें

डा. बलदेव सहाय

अब तक हम विभिन्न विधियों द्वारा ब्रह्म को, परमानन्द के स्रोत को, जानने का प्रयत्न करते रहे हैं- वह जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का द्रष्टा है; जैसे भिन्न-भिन्न नाम-रूप के सोने से बने आभूषण वास्तव में सोने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं, उसी तरह ब्रह्म से, ईश्वर से उपजा यह संसार केवल ब्रह्म ही है, और कुछ नहीं है; **ब्रह्म सत्यं, ज्ञानं, अनन्तम्** है; जो आँख में दिखाई दे रहा है वही ब्रह्म है; ब्रह्म को समझने के लिए शनैः-शनैः एक-एक सीढ़ी ऊपर चढ़ना चाहिए, छलाँग मारने से कुछ हाथ आने वाला नहीं है इत्यादि। पर शायद हममें से अधिकांश क्षणिक सुख-क्षणभंगुर धन-दौलत, मान-मर्यादा, ऐश्वर्य-वैभव के ही चक्कर में पड़े हैं। उसका मुख्य कारण यह है कि हम आज भी उन्हीं को महत्त्व देते हैं; ब्रह्म के बारे में हमने कुछ शब्द-ज्ञान तो प्राप्त कर लिया है, आत्म-ज्ञान नहीं, और न ही हमने अभी तक उसकी प्राप्ति, **आनन्द की खोज** को, अपना लक्ष्म बनाया है। जिस दिन हमने उसे अपना ध्येय निश्चित कर लिया, हमने उसके जानने का ध्यान द्वारा पहला पग उठा लिया, हमें तनिक भी उस आनन्द का चस्का पड़ गया, फिर तो पौ-बारह हैं। हम बढ़ते ही जाएँगे, बढ़ते ही जाएँगे, पीछे मुड़कर देखने का प्रश्न ही नहीं उठेगा।

एक महात्मा से किसी गृहस्थ ने कहा : ''महाराज, आपने संसार के सारे सुख छोड़ दिए हैं, आपका त्याग महान् है, आप धन्य हैं।'' संत ने उत्तर दिया, ''मुझसे कहीं बड़ा तो आपका त्याग है, मैं तो विस्मित हूँ आपके त्याग को देखकर। मैंने सत्य को, अनन्त को, ज्ञान के सागर को पाने के लिए अस्थायी आने-जानेवाले, क्षणभंगुर सुखों को तिलांजलि दी है और आपके केवल अनित्य सुख के लिए नित्य, चिरस्थायी परमानन्द का त्याग कर दिया!''

हमारे उपनिषत्कारों की असीम कृपा, अपार दया के लिए हम कभी भी पर्याप्त धन्यवाद दे नहीं सकते जो समस्त मानव-जाति के कल्याण हेतु, नित नवीन ढंग से उस परमानन्द तक पहुँचने के अनेक मार्ग दिखाते नहीं थकते। क्या पता किसको कौन-सी बात चुभ जाए, कौन-सी युक्ति भा जाए और वह चल पड़े आनन्द की खोज में ! **केनोपनिषद् ब्रह्म** को जानने की समस्या का बड़े विलक्षण ढंग से कथोपकथन के रूप में समाधान प्रस्तुत करता है। एक अधिकारी शिष्य बड़ी काव्यमय भाषा में गुरु से प्रश्न करता है: ''यह मन मानो किसकी प्रेरणा से अपने विषयों पर टूटा पड़ता है?'' प्रश्न का अंदाज़ देखते हुए **रवीन्द्र कवीन्द्र नाथ ठाकुर** की कविता की एक पंक्ति याद आती है- देखने की उत्सुकता को दर्शाते हुए वह कहते हैं- **देखिवारे आँखि पाँखि धाए**- देखने के लिए आँखों के पक्षी दौड़े। आगे साधक पूछता है- ''किसके द्वारा प्राण पहले-पहल गति करने लगता है- हम वाणी बोलते हैं, चक्षु और श्रोत्र अपने-अपने विषयों में नियुक्त हो जाते हैं?'' हम सबके मन में भी ऐसे प्रश्न उठते हैं, और उठने भी चाहिएँ।

गुरू ने इस प्रश्न का जो रहस्यमय उत्तर दिया वह विश्व के दार्शनिक साहित्य में अद्वितीय है। उन्होंने कहा: वह कानों का कान, आँखों की आँख है, मन का वही मन है, वाणी की वही वाणी है, प्राण का वही प्राण है। यह जानकर धीर लोग इन्द्रियों के विषयों का साथ छोड़ देते हैं और इस लोक में मरकर अमर हो जाते हैं- **'अतिमुच्य धीराः प्रत्यास्माल्लोकाद् अमृता: भवन्ति'** अगले मन्त्र में इस भाव की व्याख्या करते हुए ऋषि कहते हैं- ''आँख- अथवा कोई भी इन्द्रिय-वाणी, मन आदि वहाँ पहुँच ही नहीं सकते । जो हम जानते हैं 'वह' उससे अन्य है, और जो हम नहीं जानते हैं उससे भी भिन्न है। ऐसा भी नहीं है कि हम उनको बिल्कुल नहीं जानते, संसार में उसका आभास तो सब को है, इसलिए वह अविदित भी नहीं है। हमसे पूर्व जिन ऋषियों ने 'उस' की व्याख्या की है हम उनसे ऐसा ही सुनते चले आए हैं।

बड़ी विचित्र व्याख्या है। पहली बात तो यह समझना है कि हमारी इन्द्रियाँ, हमारा मन भी 'उस' तक नहीं पहुँच सकता- वह अतीन्द्रिय है। इसको समझना इतना कठिन भी नहीं है। जो सबको देखता है आँख उसे कैसे देख सकती है! जो सब-कुछ सुनता है कान उसे कैसे सुन सकते हैं। जो सबके मन की बात जानता है मन उस तक कैसे पहुँच सकता है! हमारी सारी इन्द्रियों की रचना कुछ इस प्रकार हुई है कि वे सब बाहर के विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं, पर 'उस' को जानने के लिए तो अन्तर्मुखी होना आवश्यक है, अत: प्रत्याहार का अभ्यास करना पड़ेगा। क्या आँख, आँख को देख सकती है? एक कलाबाज़ कितना ही चतुर क्यों न हो, वह अपने कन्धों पर तो सवार हो नहीं सकता। मन भी 'वहाँ' तक नहीं पहुँच सकता, वह 'जाननेवाले' को कैसे जान सकता है! हमारी इन्द्रियाँ उन वस्तुओं का वर्णन कर सकती हैं जिनका नाम-रूप हो, गुण-दोष हों। ब्रह्म उसका नाम है, रूप उसका है नहीं, गुणातीत है वह। हाँ, उसके समझने के लिए हमने उसकी परिभाषाएँ बना रखी हैं- वह सच्चिदानन्द है, **सत्यं-ज्ञानं-अनन्तम्** है इत्यादि। ये सब अस्थायी, अन्तरिम परिभाषाएँ हैं जिनकी सहायता से हमें उसके बारे में कुछ जानकारी मिल सके, पर वस्तुत: ब्रह्म वाणी से परे है, मन की पकड़ के बाहर है, बुद्धि उसकी व्याख्या कर नहीं सकती, और जो व्याख्या की जाती है वह ब्रह्म है नहीं- **अक्ल में जो घिर गया लाइन्तहा क्योंकर रहा!**

मन्त्र कहता है- जो हम जानते हैं ब्रह्म उससे अलग है, जो हम नहीं जानते हैं वह उससे भी अन्य है- **तद्विदितादथो अविदितादधि** इसमें विरोधाभास प्रतीत होता है, पर ऐसा है नहीं। **ईशावास्यं इदं सर्वम्** ईश्वर कण-कण में व्याप्त है, परम प्रज्ञा है, रहस्यमयी है, इन्द्रियों तथा मन-बुद्धि द्वारा नहीं जाना जा सकता; वह केवल अन्तर्बोध, अन्त:प्रज्ञा द्वारा ही जाना जा सकता है। अन्त:प्रज्ञा के विकास के लिए मन की शुद्धि, विकार-रहित

thearyasamaj.org

होना, कामनाओं से निवृत्त होना और जमकर ध्यान करना आवश्यक है। प्रजापति ने विरोचन तथा इन्द्र दोनों को यह शिक्षा दी थी कि जो तुम्हारी आँख में दिखाई दे रहा है वह ब्रह्म है। विरोचन ने उसका यह अर्थ निकाला कि यह शरीर ही ब्रह्म है और लग गए उसको बनाने-सँवारने में। पर इन्द्र ने विचार किया कि यह शरीर और उसके उन्नीस मुख तो नश्वर हैं, यह ब्रह्म कैसे हो सकता है? इस तरह अपनी शंकाओं का निवारण करने प्रजापति के पास वह तीन बार आए और हर बार उनका ३२ वर्ष तक तपस्या करने का आदेश दिया गया। जब वह चौथी बार पुनः आए, तब भी प्रजापति ने देखा कि अब भी वह कुछ कच्चे हैं और पाँच वर्ष उनको और तप करने का परामर्श दिया। तप का अर्थ है अपनी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करना और अपने विषयों की ओर लपकने से रोकना आदि। इन्द्र को १०१ वर्ष तक तप करने के बाद प्रजापति ने ब्रह्म का रहस्य बताया। हम यदि ब्रह्म को जानना चाहते हैं, उसमें लीन होना चाहते हैं तो कम से कम ग्यारह वर्ष तो चित्त-शुद्धि में लगाएँ ! तब शायद हमारी अन्तःप्रज्ञा में स्फुरण हो। यदि हम अपने-आपसे, अपने सम्बन्धियों से, संसार से ही चिपके रहेंगे तो परमानन्द की ओर किस प्रकार अग्रसर हो सकेंगे!

ग्यारह वर्ष के तप का आशय यह नहीं है कि आप राजा इन्द्र की तरह अपना सिंहासन त्यागकर वनवास ले लें। समय बदल गया है। उन्होंने तो राजपाट-वह भी स्वर्ग का-छोड़ दिया था। आप, और हम, जहाँ रहते हैं वहीं रहें, जिस कार्य में लगे हुए हैं वही करते रहें, अपने परिवार, समाज, राष्ट्र के कर्त्तव्यों का यथापूर्व पालन करें; केवल तीन बातों का और अभ्यास करें- एक, अपनी इन्द्रियों के घोड़ों पर लगाम लगाएँ, उनको इधर-उधर उद्दण्ड भागने से, भटकने से रोकें, जो प्राप्त है उसमें संतोष करें। आगे बढ़ने की आकांक्षा भी बुरी नहीं है पर मर्यादा के अन्दर, अपनी क्षमता के अनुरूप; विचलित न हों। इसके अभ्यास से दूसरी बात निकलती हैं- प्रत्येक परस्थिति में सम रहने की। यह बहुत बड़ा तप है। जब कोई आपकी इच्छा के विरुद्ध कार्य करेगा तो क्रोध जागेगा; उसका क्षमा से निवारण करें; जब कोई विपदा पड़ेगी तो दुःख उपजेगा। जन्म से आदत जो पड़ी हुई है! उस समय सहनशीलता से काम लें, धैर्य रखें। संसार में रहेंगे तो सुख-दुःख तो आते-जाते रहेंगे ही।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।

आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।। (गीता II-14)

भगवान् कृष्ण **गीता** में अर्जुन को समझाते हैं कि सर्दी-गर्मी आती है, चली जाती है, अनित्य है; इसलिए हे भारत! तू उनको सहन कर। सुख-दुःख हानि-लाभ, जय-पराजय को समान समझो (गीता II-38) क्योंकि **समत्वं योग उच्चते** (गीता II-48) जो कुछ भी कर्म करें उसके फल की इच्छा न करें और जो कुछ फल मिले भगवान् का प्रसाद मानकर उसमें समभाव रखें- इसी का नाम 'योग' है।

तीसरा सुझाव है कि अपनी इच्छाओं को, आवश्यकताओं को यथासम्भव कम करने का प्रयत्न करें- यह भी एक तप है; कितनी कम करें इसका कोई सामान्य मापदण्ड निर्धारित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं यह निर्णय लेना है कि वह अपनी कामनाओं को कहाँ तक सीमित कर सकता है। अधिक इच्छाओं का एक मूल कारण है लोभ; दूसरा- अपने ऐश्वर्य का अभद्र दिखावा; तीसरा- अवांछनीय अहंकार। हमारा यह सामाजिक कर्तव्य भी है कि जितना हो सके हम अपनी आवश्यकताओं को कम करें जिससे दूसरे सदस्यों की भी इच्छाएँ पूरी हो सकें। महात्मा गांधी का कहना है कि वसुंधरा सबकी जरूरतों की तो पूर्ति कर सकती है, पर उनके लोभ की नहीं। संसार में आजकल जितनी मार-काट, लूट-मार, भ्रष्टाचार और व्यभिचार बढ़ता जा रहा है, उसका सबसे बड़ा कारण असीमित लोभ और भौतिक साधनों का दुरुपयोग है। अन्तर्राष्टीय स्तर पर, विश्व के एक-तिहाई लोग पृथ्वी की दो-तिहाई सम्पदा का उपभोग करते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर अधिकांश देशों में भ्रष्टाचार का बाज़ार गर्म है और इसकी चपेट से साधारण जनता का तो कहना ही क्या है, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मन्त्रीगण, राजनीतिज्ञ और अधिकारीवर्ग कोई भी अछूता नहीं रहा है। उच्छृंखल इच्छाओं का तो यह दृश्य है कि किसी के पास ३०० जोड़ी जूते हैं तो किसी के पास तीन हज़ार साड़ियाँ। यदि हममें से प्रत्येक व्यक्ति यह निश्चय कर ले कि कम से कम वह इन तपों को अवश्य अपनाएगा तो हम स्वयं सुखी रहेंगे, समाज सुखी रहेगा और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को बल मिलेगा, साथ ही हम ब्रह्मानन्द प्राप्त करने के मार्ग पर पहला पग तो बढ़ा ही लेंगे। यदि हम अपनी लगन के पक्के रहे, और अपने ध्येय को प्राप्त करने में सच्चे रहे तो निश्चय ही परमानन्द की ओर बढ़ते जाएँगे; किस रफ्तार से बढ़ेंगे यह किसी अन्य के हाथ में नहीं, हमारे हाथ में है।

२. कर्म एक तप है

केनोपनिषद् वस्तुतः **सामवेद** का भाग है, इसे **जैमिनी ब्राह्मण** भी कहते हैं। यह बहुत छोटा, केवल चार खण्ड का है, पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपनिषद् है। पहले खण्ड में शिष्य ने गुरु से प्रश्न किया कि वह कौन है जिसकी प्रेरणा से मन मानो विषयों पर टूटा पड़ता है, आँखें देखती हैं, कान सुनते हैं इत्यादि। इसके उत्तर में गुरु ने बड़ा रहस्यमय उत्तर दिया और बताया कि साधारणतया लोग जिसकी उपासना करते हैं और उससे तरह-तरह के वरदान माँगते हैं, वह ब्रह्म नहीं है। जिसे हम जानते हैं और जिसको हम नहीं जानते हैं, वह भी ब्रह्म नहीं है। विश्व की जो आधारभूत संचालक शक्ति है वह ब्रह्म है। यों समझें कि इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों की सूचना मन को पहुँचाती हैं, पर इन्द्रियाँ और मन तो जड़ हैं, वे इस सूचना को शरीर के, जगत के, नियंता को देते हैं, आत्मा फिर उस सूचना को वापस लौटा देता है, तब हमें संसार की जानकारी होती है। आत्मा जैसे राजा है, जब वह सूचना पर अपनी मोहर लगाकर मन-रूपी प्रधानमंत्री को देता है तभी हम जगत-व्यापार समझ पाते हैं। वह आत्मा जीवन में होती है तो जीवात्मा कहलाती है और जब सृष्टि में रहती है तो ब्रह्म कही जाती है। उसी के प्रकाश में सब-कुछ हो रहा है, अन्यथा सब जड़ है, शून्य है।

thearyasamaj.org

दैव्यजनों की सङ्गति

आचार्य प्रियव्रत

यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽ
भिद्रोहं मनुष्या ३श्चरामसि।
अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम
मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ।।५।।

अर्थ- **(वरूण)** हे पाप से बचानेवाले प्रभो ! **(मनुष्याः)** हम साधारण कोटि के मनुष्य **(दैव्ये)** प्रकाशयुक्त ज्ञानी **(जने)** जनों के प्रति (यत्) जो **(किंच)** कुछ भी **(इदम्)** यह **(द्रोहम्)** द्रोह **(चरामसि)** करते हैं और इसलिए **(अचित्ती)** अज्ञान से **(यत्)** जो **(तिव)** तेरे **(धर्मा)** नियमों को **(युयोपिम)** तोड़ देते हैं **(देव)** हे दिव्यशक्तियोंवाले प्रभो! **(तस्मात्)** उस **(एनसः)** पाप से **(नः)** हमें **(मा)** मत **(रीरिषः)** मारिए।

जब हमसे कोई पाप हो जाता है तब भगवान् हमें मारते हैं, दण्ड देते हैं। प्रभु वरूण हैं, हमें पाप से बचानेवाले हैं, इसलिए वे पाप से बचाने के लिए ही हमें पाप करने पर दण्ड देते हैं। जिस पाप के करने पर हमें प्रभु की प्यार-भरी मार सहनी पड़ती है, वह पाप हमसे क्यों हो जाता है? हम क्यों कोई पाप कर बैठते हैं? और उस पाप का स्वरूप क्या है? हमारा कौन-सा कर्म पाप हो जाता है और कौन-सा कर्म पुण्य रहता है?

मन्त्र में प्रभु के धर्मों को तोड़ना ही पाप बताया गया है। मन्त्र में कहा गया है कि ''हे देव हम जो तेरे धर्मों को तोड़ देते हैं, उस पाप से हमें मत मारिए।'' अतः स्पष्टरूप में प्रभु के धर्मों को तोड़ना ही पाप है। प्रभु ने संसार के प्रत्येक क्षेत्र के लिए और प्रत्येक पदार्थ के लिए कुछ धर्म बनाये हैं। धर्म का शब्दार्थ है जो धारण करे, बाँधकर रक्खे, जिसके कारण किसी पदार्थ का अपना स्वरूप बना रहे, इसलिए किसी पदार्थ के जो ऐसे गुण हैं जिनके होने से वह पदार्थ, वह पदार्थ रहता है, यदि वे गुण उसमें न हो तो वह पदार्थ वह पदार्थ न कहा जा कर कोई और पदार्थ कहा जाता, उन गुणों को उस पदार्थ के धर्म कहा जाता है। उदाहरण के लिए अग्नि के प्रकाश, उष्णता और ज्वलन आदि गुणों को उसका धर्म कहा जाता है। पदार्थ के इन धर्मों को कई बार व्रत, नियम आदि शब्दों से भी कहा जाता है। जब हम परमात्मा के बनाये पदार्थों के इन धर्मों को, इन नियमों को तोड़ देते हैं, इनका उल्लंघन कर देते हैं, तब हमसे पाप हो जाता है। प्रभु के बनाये धर्मों, नियमों का उल्लंघन करके हम जो आचरण करते हैं, उस हमारे आचरण को पाप कहा जाता है। साधारण बोल-चाल में मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार में एक -दूसरे के साथ बर्ताव करने के जो धर्म, नियम या कर्तव्य हैं, उन्हीं का भङ्ग करने पर हम किसी व्यक्ति को पापी कहते हैं, परन्तु व्यापक दृष्टि से तो किसी भी पदार्थ के धर्मों का उल्लंघन करके किया हुआ हमारा आचरण पाप कहलाएगा। हमें पता है कि आग का एक धर्म जलाना भी है। यदि हम आग के इस धर्म का ध्यान न रखकर आग में हाथ डालेंगे तो हमारा हाथ जल जाएगा हमें हाथ जल जाने का कष्ट इसलिए उठाना पड़ा कि हमने आग के एक धर्म का ध्यान न रखते हुए उसके साथ जैसा चाहिए था वैसा आचरण नहीं किया। हमने आग के साथ बर्ताव करने में अपनी ओर से एक पाप किया। पाप का फल तो कष्ट होगा ही। हमारे आचरण से आग को तो कोई कष्ट नहीं होता, क्योंकि वह जड़ है, परन्तु हमारा आचरण मिथ्याचरण था, अग्नि के धर्मों के प्रतिकूल था, इसलिए वह पाप ही है। जब हम किसी भी पदार्थ के साथ किसी विशेष सम्बन्ध में आते हैं तब उस सम्बन्ध के अनुसार हमारे और उस पदार्थ के परस्पर बर्ताव करने के जो धर्म हैं, उनका ध्यान न रखकर, उनके प्रतिकूल जो हम आचरण कर बैठते हैं उसी का नाम पाप है। चेतन प्राणियों के साथ हमारे इस प्रतिकूल आचरण से उनको कष्ट भी पहुँचता है। जड़ पदार्थों के साथ प्रतिकूल आचरण से उनको कष्ट नहीं पहुँचता। प्रभु ने यह व्यवस्था रक्खी है कि जड़ पदार्थों के साथ प्रतिकूल आचरण करने से तो हमें तत्काल उसके प्रतिफल में दुःख मिल जाता है और चेतन प्राणियों के साथ प्रतिकूल आचरण करने से हमें उसके प्रतिफल में कई बार तत्काल और कई बार कालान्तर में दुःख प्राप्त होता है। पाप का फल दुःख अवश्य मिलता है, चाहे वह तत्काल मिले चाहे कालान्तर में।

हम प्रभु के बनाये धर्मों का, नियमों का भङ्ग क्यों कर देते हैं इस प्रकार पाप क्यों कर बैठते हैं? इसका कारण होता है हमारा अज्ञान। यदि हमें प्रत्येक पदार्थ का और प्रत्येक अवस्था का पूरा ज्ञान हो तो हम प्रभु के नियमों का कभी भङ्ग न करें और इस प्रकार कभी पाप के भागी न बनें। हमारे सब अनर्थों की, सब रोगों की, सब कष्टों की जड़ हमारा अज्ञान है।

हमारा अज्ञान दूर होकर हमें ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है? इसके लिए हमें ''दैव्यजनों'' की सङ्गति करनी चाहिए। हम जैसी सङ्गति करते हैं वैसे ही हम बन जाया करते हैं। मूर्खजनों की सङ्गति में रहने से हम मूर्ख हो जाते हैं और ''दैव्यजनों'' की सङ्गति में रहने से हम भी ''दैव्यजन'' बन जाते हैं। ''दिव्'' का अर्थ होता है प्रकाश। जो सदा ''दिव्'' में, प्रकाश में रहें ऐसे लोगों को ''दैवजन'' कहते हैं। जो लोग प्रकाशयुक्त हैं, ज्ञानी है, वे ''दैव्यजन'' हैं। संसार के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के पदार्थों से सम्बन्ध रखनेवाली विद्याओं और शास्त्रों के ज्ञाता पण्डितों को-ब्राह्मणों को ''दैव्यजन'' कहते हैं, क्योंकि उनके पास ज्ञान का, सब रहस्यों को दिखा देनेवाला महान् प्रकाश है। जहाँ विभिन्न विद्याओं के पण्डित लोग ''दैव्यजन'' कहलाते हैं, वहाँ वरुण प्रभु, वरुणीय भगवान् दैव्यजनों के महा दैव्यजन हैं। उन-सा ज्ञान, उन-सा प्रकाश तो किसी के पास नहीं है। हमें पाप के मूल अज्ञान का नाश करने के लिए ''दैव्यजनों'' की सङ्गति में बैठना चाहिए। विभिन्न पण्डितों की सङ्गति में बैठकर विश्व के विभिन्न पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए- उनके धर्म जानने चाहिएँ। इसके साथ ही हमें महा ''दैव्यजन'' प्रभु की सङ्गति भी करनी चाहिए। प्रभु ने सृष्टि के आरम्भ में हमारे कल्याण के लिए वेद का उपदेश दिया है। उसका अध्ययन करने से हमें अनेक आवश्यक बातों के रहस्य पता लगेंगे। प्रभु के वेद को पढ़ना प्रभु की सङ्गति में बैठना है। इसके अतिरिक्त हमें प्रात-सायं प्रभु की उपासना में, उनकी भक्ति में बैठकर भी उनकी सङ्गति प्राप्त करनी चाहिए। सच्चे हृदय से प्रभु की उपासना में बैठनेवाले व्यक्ति को अनेक बार प्रभु की प्रेरणा प्राप्त होती है जो

thearyasamaj.org

कितने ही रहस्यों को खोलकर हमें प्रकाश दे जाती है और यों भी हमें उपासना के समय प्रभु के गुणों पर तन्मय होकर विचार करने से अनेक शिक्षाएँ प्राप्त होती हैं, जिनका अनुसरण करने से हमारे अनेक प्रकार के अन्धकार कट सकते हैं। इस प्रकार विद्वान् ब्रह्माणों और परमात्मा इन दो ''दैव्यजनों'' की सङ्गति में बैठने से हमें आवश्यक मान प्राप्त होगा, जिसका फल यह होगा कि हम पाप से बच जाएँगे और सदा सुख में रहेंगे। हम प्राय: दैव्यजनों से द्रोह करते हैं, उनसे अप्रीति करते हैं। इस द्रोह, इस अप्रीति का फल यह होता है कि हम उनकी प्रकाश देनेवाली सङ्गति से दूर रहते हैं। हमें प्रकाश न मिलने से, ज्ञान प्राप्त न हो सकने से हम पापाचरण में प्रवृत्त हो जाते हैं और इस प्रकाश भाँति-भाँति के कष्ट हमें भोगने पड़ते हैं। पापजन्य कष्ट से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि हम ''दैव्यजनों'' की सङ्गति में बैठकर ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करें और इस प्रकार स्वयं भी साधारण मनुष्य न रहकर ''दैव्यजन''- प्रकाशवाले व्यक्ति बन जाएँ। इसके लिए हमें ''दैव्यजनों'' से प्रीति जोड़कर उनकी सङ्गति में बैठने का अभ्यास डालना चाहिए।

हे प्रभो ! हमें हमारे पापजन्य दण्ड की मार से मत मारिए। हमें अपनी और अन्य दैव्यजनों की सङ्गति में बैठने की बुद्धि और शक्ति दीजिए, जिससे हम पाप के मूल अज्ञान से दूर रह सकें। हे देव! हमपर यह कृपा करके हमें दु:ख-सागर से उबारकर आनन्दोदधि में निमग्न कीजिए।

स्वामी दयानन्द की गुरु भक्ति

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी सच्चे गुरु की खोज में भटकते भटकते अखिर दंडी स्वामी की कुटिया में पहुंच गए। दंडी जी के पास अनेक शिष्य आते, कुछ समय तक दंडी स्वामी की पाठशाला में रहते, मगर उनके क्रोध, उनकी प्रताड़ना को सहन न कर सकने के कारण भाग जाते। कोई-कोई शिष्य ऐसा निकलता, जो उनके पास पूरा समय रहकर पूरी शिक्षा पा सकता।

यह दंडी स्वामी (स्वामी विरजानंद) की एक बड़ी कमजोरी थी। दयानन्द सरस्वती को भी उनसे कई बार दंड मिला, मगर वह दृढ निश्चयी थे अत: पूरी शिक्षा प्राप्त करने का संकल्प किए डटे रहे।

एक दिन दंडी स्वामी को क्रोध आया और उन्होंने अपने हाथ के सहारे ली हुई छड़ी से दयानन्द की खूब पिटाई करते हुए उसकी खूब भर्त्सना कर दी। मूर्ख नालायक धूर्त.... पता नहीं क्या-क्या कहते चले गए।

दयानन्द के हाथ में चोट लग गई, काफी दर्द हो रहा था, मगर दयानन्द ने बिल्कुल भी बुरा नहीं माना बल्कि उठकर गुरुजी के हाथ को अपने हाथ में ले लिया और सहलाते हुए बोले- ''आपके कोमल हाथों को कष्ट हुआ होगा। इसके लिए मुझे खेद है।''

दंडी स्वामी ने दयानन्द का हाथ झटकते हुए कहा- 'पहले तो मूर्खता करता है, फिर चमचागिरी। यह मुझे बिलकुल भी पसंद नहीं।'

पाठशाला के सब विद्यार्थियों ने यह दृश्य देखा । उनमें एक नयनसुख था, जो गुरुजी का सबसे चहेता विद्यार्थी था। नयनसुख को दयानन्द से सहानूभुति हो आई, वह उठा और गुरूजी के पास गया तथा बड़े ही संयम से बोला. 'गुरुजी ! यह तो आप भी जानते हैं कि दयानन्द मेधावी छात्र है, परिश्रम भी बहुत करता है।'

दंडी स्वामी को अपनी गलती का अहसास हो चुका था। अब उन्होंने दयानन्द को अपने करीब बुलाया। उसके कंधे पर हाथ रखकर बोले-'भविष्य में हम तुम्हारा पूरा ध्यान रखेंगे और तुम्हें पूरा सम्मान देंगे।'

जैसे ही छुट्टी हुई, दयानन्द ने नयनसुख के पास जाकर कहा- 'मेरी सिफारिश करके तुमने अच्छा नहीं किया, गुरूजी तो हमारे हितेषी हैं। दंड देते हैं तो हमारी भलाई के लिए ही। हम कहीं बिगड़ न जाएं, उनको यही चिंता रहती है।'

यही दयानन्द आगे चलकर महर्षि दयानन्द बने और वैदिक धर्म की स्थापना हेतु 'आर्य समाज' के संस्थापक के रूप में विश्वविख्यात हुए।

यह सब सच्ची गुरु भक्ति का ही फल है।

संक्षिप्त परिचय

१) नाम- विद्याभानु

२) पितृनाम- श्री जुगल किशोर

३) जन्मस्थान- सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)

४) शिक्षा- शास्त्री, आचार्य (साहित्य) एम. ए. (संस्कृत)

५) शिक्षा प्राप्तिस्थल- श्री वेद विद्यालय गुरुकुल घरौण्डा जि. करनाल (हरियाणा)

६) शिष्यत्व- I पूज्य स्वामी रामेश्वरानन्दजी महाराज आचार्य कुलपिता गुरुकुल घरौण्डा

II आदित्य ब्रह्मचारी पूज्य स्वामी भीष्मजी महाराज घरौण्डा, हरियाणा के प्रतिष्ठित कवि तथा आर्यसमाज के प्रति समर्पित ओजस्वी वक्ता, प्रचारक एवं गायक

७) जन्मतिथि- पौष शुक्ला चतुर्दशी संवत् १९९४ (सन् १९३७)

८) सम्प्रति- प्रिंसिपल-दयानन्द माडल स्कूल जन्मू

९) अध्यापन कार्य महाराजा हरिसिंह एग्रीकल्चरल का लिजिएट पब्लिक स्कूल नागबनी, जम्मू

१०) वेदप्रचार कार्य का अनुभव

१९५७ से अब तक (२०१४) ५७ वर्ष

११) प्रचार कार्य क्षेत्र-

१ सम्प्रति १९६५ से जम्मू-काश्मीर प्रान्त

२ जम्मू-काश्मीर, पंजाब, हिमाचल, हरियाणा,

उत्तर प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान,

उत्तराखण्ड, महाराष्ट्र आदि प्रान्त।

१२) सन् १९६८ से आर्य प्रतिनिधि सभा जम्मू काश्मीर के अनेक सम्माननीय महामन्त्री मन्त्री, वेदप्रचार अधिष्ठाता, धर्मार्यसभा संयोजक, अन्तरंग सभा का सदस्य आदि पदों पर प्रतिष्ठित।

१३) समय-समय पर अनेक आर्य समाज एवं गैर आर्यसमाजी संगठनों द्वारा अनेक रूपों में सम्मान-प्राप्त।

१४) केन्द्रीय आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के द्वारा १९९६ में लाल किला मैदान में ऋषिबोध महापर्व पर केन्द्रीय मन्त्री, सार्वदेशिक सभा के अधिकारियों, एवं दिल्ली के महापौर के द्वारा सम्मानित।

१५) वर्तमानपत्ता :-

गली नं. ९, ग्रीन एन्क्लेव, निकट एजूकेशन बोर्ड, जम्मू-काश्मीर

सम्पर्कसूत्र- मो. ०९४१९१-१२९९०

thearyasamaj.org

सहनशीलता का जादू

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

महर्षि दयानन्द ठहरे थे फ़र्रुख़ाबाद में गंगा के तट पर। उनसे थोड़ी ही दूर एक और झोंपड़ी में एक दूसरा साधु भी ठहरा हुआ था। प्रतिदिन वह देव दयानन्द की कुटिया के पास आकर उन्हें गालियाँ देता रहता। देव दयानन्द सुनते और मुस्करा देते। कोई भी उत्तर नहीं देते थे। कई बार उनके भक्तों ने कहा- ''महाराज ! आपकी आज्ञा हो तो इस दुष्ट को सीधा कर दें?''

महाराज सदा कहते- ''नहीं, वह स्वयं ही सीधा हो जायेगा।''

एक दिन किसी सज्जन ने फलों का एक बहुत बड़ा टोकर महर्षि के पास भेजा। महर्षि ने टोकरे से बहुत अच्छे-अच्छे फल निकाले, उन्हें एक कपड़े में बाँधा और एक व्यक्ति से बोले- ''ये फल उस साधु को दे आओ, जो उस परली कुटी में रहता है, जो प्रतिदिन यहाँ आकर कृपा करता है।''

उस व्यक्ति ने कहा- ''परन्तु वह तो आपको गालियाँ देता है?'' महर्षि बोले- ''हाँ, उसी को दे आओ।''

वह सज्जन फल लेकर उस साधु के पास गए। जाकर बोले- ''साधु बाबा! ये फल स्वामी दयानन्द ने आपके लिए दिये है।''

साधु ने दयानन्द का नाम सुनते ही कहा- ''अरे ! यह प्रात:काल किसका नाम ले लिया तूने? पता नहीं, आज भोजन भी मिलेगा या नहीं। चला जा यहाँ से! मेरे लिए नहीं, किसी दूसरे के लिए भेजे होगे। मैं तो प्रतिदिन उसे गालियाँ देता हूँ।''

उस व्यक्ति ने महर्षि के पास आकर यही बात कही।

महर्षि बोले- ''नहीं, तुम फिर उसके पास जाओ। उसे कहो कि आप प्रतिदिन जो अमृत-वर्षा करते हो, उसमें आपकी पर्याप्त शक्ति लगती है। ये फल इसलिए भेजे हैं कि इन्हें खाइये, इनका रस पीजिये, जिससे आपकी शक्ति बनी रहे और आपकी अमृत-वर्षा में कमी न आ जाये।''

उस व्यक्ति ने साधु के पास जाकर वही बात कह दी- ''सन्त जी महाराज! ये फल स्वामी दयानन्द ने आप ही के लिए भेजे हैं और कहा है कि आप प्रतिदिन जो अमृत-वर्षा उनपर करते हैं, उसमें आपकी पर्याप्त शक्ति व्यय होती है। इन फलों का प्रयोग कीजिये, जिससे आपकी शक्ति बनी रहे और आपकी अमृत-वर्षा में न्यूनता न आए।''

साधु ने यह सुना तो घड़ों पानी उसके ऊपर पड़ गया। निकला अपनी कुटिया से, दौड़ता हुआ पहुँचा महर्षि के पास। उनके चरणों में गिर पड़ा; बोला- ''महाराज ! मुझे क्षमा करो। मैंने आपको मनुष्य समझा था, आप तो देवता है!''

यह है सहनशीलता का जादू ! जिसमें यह सहनशीलता उत्पन्न हो जाती है, उसके जीवन में एक अनोखी मिठास, एक अद्‌भुत सन्तोष और एक विचित्र प्रकाश आ जाता है।

आर्य समाज सान्ताक्रुज़में वेद प्रचार समारोह सम्पन्न

आर्य समाज सान्ताक्रुज़ (प.) मुम्बई द्वारा गुरुवार दि. २८ अगस्त से रविवार दि. ३१ अगस्त, २०१४ तक आर्य समाज सान्ताक्रुज़ के वृहद सभागार में वेद प्रचार समारोह उत्साहपूर्वक मनाया गया। इस अवसर पर प्रतिदिन प्रात: ८.०० ते ९.३० बजे ''यजुर्वेद यज्ञ का आयोजन किया गया। यज्ञ के ब्रह्मा एवं वक्ता आचार्य विद्याभानु शास्त्री जी (जम्मू) थे। यज्ञ में वेदपाठी पं. नामदेव आर्य, पं. विनोद कुमार शास्त्री, पं. नरेन्द्र शास्त्री, एवं पं. प्रभारंजन पाठक थे। यज्ञ व्यवस्था पं. नचिकेता जी ने की थी। रात्रि कालीनसत्र में ८.०० से ९.३० बजे तक प्रवचन आचार्य विद्याभानु शास्त्री एवं भजनोपदेश श्री अमरसिंह विद्यावाचस्पति के होते रहे।

इसी क्रम में रविवार दि. ३१ अगस्त, २०१४ को चार दिवसीय यजुर्वेद यज्ञ की पूर्णाहुति प्राप्त: ९.३० बजे हुई। प्रात:राश के पश्चात् १०.०० बजे से कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। तदनन्तर सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री अमरसिंह विद्यावाचस्पति (व्यावर, राजस्थान) ने प्रभु भक्ति एवं स्वामी दयानन्द पर आधारित सुन्दर गीत प्रस्तुत किये। तद्‌नन्तर सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री प्रभाकर शर्मा एवं कुमार योगेश आर्य ने भी सुन्दर एवं मनोहारी गीत प्रस्तुत किये। आचार्य विद्याभानु शास्त्री जी ने वेद मंत्रो की सुदंर व्याख्या करते हुए तर्को प्रमाणो तथ्यों उदाहरणों से श्रोताओं को लाभान्वित किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद का प्रचार प्रसार किया था तथा आर्य समाज की स्थापना भी इसी उद्‌देश्य से की थी अत: हम सबको वेदों का सार्वजनिक प्रचार प्रसार करना होगा। ईश्वर एक हैं उसी एक शुद्धतम ईश्वर की उपासना करके ही लोग कष्टों से मुक्त हो सकेंगे। आप के वैदिक सिद्धान्तों से ओत-प्रोत सारगर्भित, प्रेरणादायक प्रवचन हुए। इस अवसर पर आचार्य विद्याभानु शास्त्री को राजकुमार कोहली वरिष्ठ विद्वान पुरस्कार से सम्मानित करते हुए रु. १५०००/- का चेक, शाल, श्रीफल, ट्राफी और मोतीमाला भेंट किया गया। श्री प्रभाकर शर्मा द्वारा विनिर्मित ओडियो सी.डी. **''कैसे आएंगे भगवान''** का विमोचन आचार्य विद्याभानु शास्त्री जी (जम्मू) ने किया। सी.डी. का मूल्य रु.७०/- हैं।

आर्य समाज सान्ताक्रुज़ के प्रधान श्री चन्द्रगुप्त आर्य तथा श्री लालचन्द आर्य ने आमंत्रित अतिथिओं का माल्यार्पण कर अभिनन्दन किया। प्रधान जी ने सभी उपस्थित विद्वानों, अतिथियों, श्रोताओं एवं कार्यकर्त्ताओं तथा सहयोगियों एवं दानदाताओं का हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए धन्यवाद दिया। महामन्त्री श्री संगीत आर्य ने सम्पूर्ण कार्यक्रम का संचालन किया। शान्तिपाठ एवं जयघोष के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। ततपश्चात सभी ने प्रीति भोज का आनन्द लिया।

स्वतन्त्रता दिवस समारोह

आर्य समाज सान्ताक्रुज़ में शुक्रवार दि. १५ अगस्त, २०१४ को प्रात: ०७.०० से ०७.४५ तक यज्ञ का आयोजन किया गया। तत्तपश्चात आर्य समाज सान्ताक्रुज़ के प्रधान श्री चन्द्रगुप्त आर्य द्वारा प्रात: ०८.०० बजे स्वाधीनता दिवस के उपलक्ष्य में ध्वजारोहन किया गया। इस अवसर पर आर्य समाज के अनेक सक्रिय सदस्य एवं पधाधिकारी उपस्थित थे। माननीय प्रधान जी ने स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर अपना उद्बोधन देते हुए कहा कि हमें अपनी देश की आन-बान-शान को बनाए रखना होगा।

thearyasamaj.org

भाद्रपद २०७० (सितम्बर २०१४) Post Date : 25-09-2014 MH/MR/N/136/MBI/-13-15 MAHRIL 06007/31/12/2015-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : **संगीत आर्य**

मुद्रक एवं प्रकाशक : **चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटींग प्रेस,**
२६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन,
वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४.
से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८००/२६६०२०७५/२२९३१५१८

प्रति,

टिकट

स्वर्ग शारीरिक है अथवा आत्मिक?

चमूपति एम.ए.

स्वर्ग का अर्थ है 'सुख की अवस्था'। यह सुख शरीर के साथ भी हो सकता है और शरीर के बिना भी; बौद्धिक सुख भी हो सकता है और शारीरिक सुख भी; दोनों प्रकार का सुख जीवन में भी प्राप्त हो सकता है, तथा मृत्यु के पश्चात् भी। मोक्षावस्था का आरम्भ इसी शरीर में होता है; हाँ, आत्मिक आनन्द का साधन यह शरीर नहीं होता। यह भी नहीं कि आत्मिक आनन्द की प्राप्ति के लिए शरीर का अभाव आवश्यक हो। मृत्यु के पश्चात् जिन्हें अच्छा जन्म मिल गया, उन्हें भी एक प्रकार का स्वर्ग मिल गया। मोक्ष के लिए एक विशेष शब्द है- अमृत। इस प्रकार की अनुभूति में, प्रकाश तथा आनन्द की अवस्था होती है। यह प्रकाश तथा आनन्द विशुद्ध आत्मिक होता है। इस सूक्त में कहीं भी शारिरिक सुख अथवा शरीर के किसी अंग का वर्णन नहीं है। स्थान-स्थान पर तीसरे, अथवा शारीरिक तथा बौद्धिक सुख के ऊपर, ऊँचे आत्मिक सुख तथा प्रकाश की बात कही गई है। यह सबसे ऊँचा स्वर्ग है, यद्यपि वैदिक परिभाषा में प्रयुक्त शब्द 'स्वर्ग' इस अवस्था के लिए विशेष नहीं। सनातन-धर्मी भी, जो स्वर्ग को धरती से अलग किसी स्थानविशेष पर मानते हैं, इसे मोक्षावस्था नहीं मानते, अपितु मोक्ष से निचली अवस्था मानते हैं जिसमें आवागमन रहता है। मोक्ष सनातनधर्मी की दृष्टि में भी एक आत्मिक अनुभूति है। आर्यसमाज तथा सनातन धर्म के मन्तव्यों में अन्तर इतना ही है कि जहाँ सनातनधर्मी स्वर्ग को इस जगत् से भिन्न एक अन्य भौतिक स्थान पर मानते हैं, आर्यसमाजी इसी संसार के सुख को ही 'स्वर्ग' कहते हैं। यह अवस्था आवागमन की अवस्था में भी आ जाती है। इस अवस्था में शरीर तो रहता है।

''जो तत्त्व सर्वज्ञ तथा पथ-प्रदर्शक परमेश्वर ने (दूसरे जन्म में), माता-पिता के पास ले-जाते हुए (आत्मा से अलग नहीं किया) छोड़ दिया है, उसे मैं दूसरी बार बढ़ाता हूँ। शरीर युक्त ऐ पितरो ! माता-पिता के घर में आनन्द मनाओ !''

मंत्र १८-२-५६ का अनुवाद

''ओ आगे से जाने वाले परमेश्वर ! इसे पुन: उत्पन्न कर जो आपकी कृपा से दूसरे जन्म के (माता-पिता के) अर्पित हुआ कर्मों से मुक्त है। जीवन की ओढ़नी लेकर अपने शेष अस्तित्व के साथ (इस जन्म के निकट) आये। क्रोध से मुक्त इस शरीर के साथ मिले।

''ओ प्रकाशयुक्त आत्मा ! तेरा जो महत्त्व देवताओं में है, जो तेरा शरीर माता-पिता के मध्य में आता है, जो तेरी शक्ति जगत् में प्रसिद्ध है, इससे हमें समृद्ध बना !''

''जहाँ शुद्धहृदय तथा शुभकर्मों वाले स्वशरीर के रोगों को त्यागकर, त्रुटिरहित अंगों-सहित आनन्दमग्न हैं, उस सुखद लोक में हम पितरों तथा पुत्रों के दर्शन करें।''

इस मन्त्र से दो मन्त्र पूर्व अर्थात् (अथर्व० ६-१२०-१) में कहा है कि गार्हपत्याग्नि (विवाह के यज्ञ की अग्नि) उस लोक में ले-जावे (स्वर्गलोक में ले-जावे)। यहाँ अर्थ स्पष्ट है कि स्वर्गलोक से अभिप्राय गृहस्थाश्रम ही है।

''जहाँ शुद्धहृदय तथा शुभकर्मवाले लोग, स्वशरीर के रोग से रहित होकर आनन्दमग्न हैं, उस लोक में यह तपस्विनी (नववधु) सम्मिलित हुई है। वह हमारे मनुष्यों तथा पशुओं को कष्ट न दे।'' शतपथ ब्राह्मण (४-६-१-१) में कहा है- ''जैसे-जैसे ये इन्द्रियों के गोलक प्रकट होते हैं, यह यज्ञ करने वाला परलोक में सारे शरीर के साथ उत्पन्न होता है।'' इन मन्त्रों में स्पष्ट ही एक सुखद जीवन का वर्णन है जो शुभ कर्मों का फल है। अथर्व० ६-१२०-३ तथा ३-२८-५ में सुखी गृहस्थ का वर्णन किया है। मन्त्र ६-१२० इसी का नाम 'स्वर्ग' रखता है, और मन्त्र ३-२८-५ उसको 'लोक' शब्द से अभिहित करता है। क्या मोक्षावस्था में सूक्ष्मशरीर रहता है या नहीं? इस स्थान पर यह विवाद वर्तमान विषय से सर्वथा असम्बद्ध है, क्योंकि इन मन्त्रों में मोक्ष का वर्णन तो है नहीं, और जिस स्वर्ग का इन मन्त्रों में वर्णन है, वह आवागमन के चक्कर में आनेवाला जीवन ही है।

प्रश्न- ''वे कौन-से वेदमन्त्र हैं, जिनमें वैदिक स्वर्ग का शरीररहित केवल आत्मिक होना प्रमाणित होता है? हमने जो मन्त्र वैदिक स्वर्ग के शारीरिक होने में पृष्ठ ७५ से ७६ तक, प्रमाण-स्वरूप दिये हैं, उनका क्या उत्तर है?

उत्तर- मोक्ष का आनन्द केवल आत्मिक आनन्द है, यह बात ऋग्वेद ६-११३ में स्पष्ट है। आपने जो प्रमाण दिये हैं, वे तो आवागमन की अवस्था में आने वाले की विभिन्न अवस्थाओं के वर्णन के हैं, इनमें शारीरिक सुख भी होता है। यदि सुख का शारीरिक होना ही आपके आक्षेप का आधार है, तो कृपया पहले हमारे मन्तव्यों से परिचित हो लीजिये, और फिर आपको उपयुक्त लगे, तो अपने आक्षेपों पर पुनर्विचार का कष्ट कर लीजिये।